कला की कलम

—रघुवीर शरण "मित्र"

प्रकाशक—
अ० भा० राष्ट्रीय सा॥
प्रकाशन परिषद्
मेरठ

प्रथम संस्करण
सम्वत् २००७ विक्रमी
मूल्य ३)

मुद्रक—
सेनानी प्रेस, मेरठ।

क्रम

कला और कलम

कला सिद्धि है और कलम साधना। साधना के बिना सिद्धि नहीं हो सकती।

कला का अर्थ है अभिव्यक्ति और कलम का अर्थ है निरूपण। कला विचारों का उद्रेक है और कलम उद्रेक को प्रवाह देने वाली गति। कला की कुशलता विविध व्यष्टि है और कलम की कुशलता नये प्रयोग। कला नशरीर आत्मा है और कलम सशरीर हृदय और बुद्धि।

कला सौन्दर्य साधना से अभिव्यक्त अनुभूति की आनन्दमयी अमृता है और कलम भावभरी उपासिका। कला की खूबी है कुछ भी असुन्दर न होना और कलम का कमाल है — रसोत्पत्ति।

कला की कलम वही है जो पूर्ण का आराधनामृत आकर्षण के अम्लान अंगूरों मे भर मादक चेतना मे भौतिक एवं दार्शनिक चित्रो मे झूम स्वर गति और लालित्य ला दे। जो रसात्मिका को सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के सौन्दर्य मे आत्मसात् कर तैरती हुई दिखाई दे। जो अतीत की विस्मृतियो पर स्मृति की चमकती हुई चाँदनी बिछाकर गाये। जो अनुभूति की कला तथा शास्त्रों की बुद्धि से अभिव्यक्ति कर सके। जो कलाकार के हृदय की तस्वीर को शेष संसार की तस्वीर बना सरसो सी फूले। जो रसो की निर्झरणी सी झरे। जो प्रकृति की गोद मे गंगा बनकर तैरे। जो भाषा के भव भूषित फूलो मे विहार करे और आँसुओ की बरसात मे लेखनी की स्याही को करुण कर कण कण झनझनाती हुई अलक्ष्य की वीणा झंकृत कर दे। जो नयी बात देती हुई प्रगति की गीतिका बन चेतना चमत्कृत कर सके। जो हिमालय का हृदय फोड पथ बनाती हुई चलती रहे। जिसका आदि और अन्त अथाह हो।

कला का जीवन आकर्षण है और कलम की जिन्दगी नवीनता। कला का रूप चित्र है और कलम का स्वरूप चित्रकार। कला का रंगमंच ब्रह्माण्ड है और कलम की असीमा कल्पना।

अतृप्ति ही प्रगति है। प्रगति ही कला है। कला ही जीवन है। कलम केवल कला के लिये ही नहीं, जीवन के लिये भी है।

कला मूर्त्ति है और कलम अतृप्ति। कला प्रेरणा है और कलम प्यास। कला नायिका है और कलम उसकी ओर झुकी हुई वह अपलक वियोगिनी जिसकी आँखों से अर्घ्य बरसता है। कला जीवन है और कलम ध्वनित पग गति। कला सत्यम् शिवम् सुन्दरम् से सजी हुई कामिनी है और कलम वह भावार्घ्य वर्षिणी जिससे भावना मूर्ति के रूप मे प्रकट हो कला कहलाने लगती है।

प्रश्न और हल यही जीवन है। जन्म और मरण यही रहस्य है। आचरण और व्यवहार के संसार मे प्रश्न पूछे जाते हैं और कलम उनका उत्तर देती है। प्रत्येक स्पन्दन की चित्रमयी अभिव्यक्ति अर्थात् कलम लिखने की कला है। कलम कलामय की सम्पूर्ण संसृति को टटोलती है, उस से बाते करती है, हर कम्पन से प्रश्न करती है। कलात्मक सृष्टि उसे जवाब देती है। कलम उत्तर को हृदय और बुद्धि से चमत्कृत कर प्रत्यक्ष करती है।

जहाँ जो कुछ है वह प्रयोजन से। हर बात का कुछ न कुछ प्रयोजन है। बिना प्रयोजन के तो व्यर्थ भी नही। प्रश्न उठता है कि कलम का क्या प्रयोजन है? क्या उद्देश्य है? क्या लक्षण है? क्या इतिहास है? क्या दृष्टि है? संसार कलम से उत्तर चाहता है। प्रत्येक युग मे कलम से यह प्रश्न पूछा गया और उसने उत्तर दिया। यह प्रश्न न कभी पुराना है और न कभी नया। समय ने जब पूछा तभी कलम ने उत्तर दिया। तभी तो लक्षण साहित्य की सृष्टि हुई।

समय सीढियों पर चढता रहा और प्रश्न सामने आते रहे। प्रश्न बढते चले, उत्तर भी बढते चले। पर अतीत के प्रश्न और उत्तर पुराने नहीं पडे। समय की आँधी उन्हे उडाकर न ले जा सकी। समय के वर्त्तुलाकार वेष्टन पर खडा हुआ रसवाद का सिद्धान्त पूर्ण प्रयोजन को प्रकट करता रहा और करता रहेगा, जिस आवेष्टन मे सब कुछ है। काव्य का प्रयोजन रस है। रस का अभिप्राय आनन्द है अत: कला का उद्देश्य आनन्द का आस्वादन है। आराध्य को प्रसन्न करना है। यश की प्राप्ति है। शिक्षा का माध्यम है। अर्थ की अभिलाषा है। अनुभूतियों का चित्रण है। स्त्री और पुरुष की प्रणय भावना का आकारामृत है। धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि है। किन्तु मन्थन करने से रसवत्ता के असीमित सिन्धु में

सभी सरितायें मिलती हैं। समस्त ललित कलायें इसी महासिन्धु की रंग विरंगी लहरें हैं।

विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से व्यक्त स्थायी भाव में कला कला के लिये भी है। कला जीवन के लिये भी है। कला आदर्श के लिये भी है। कला समाज के लिये भी है। कला संसार के लिये भी है। इस परिभाषा में कला का प्रयोजन व्यष्टिवादी हृदय का समष्टिवादी चित्र है। जिस प्रकार उस एक में यह समस्त समाया हुआ है उसी प्रकार कलम की अभिव्यक्ति में समष्टि रहती है। जिस प्रकार इस संसार में असंख्य जन असंख्य जलचर, असंख्य नभचर और असंख्य थलचरों की श्वासें हैं उसी प्रकार रसात्मिका कलम की श्वास में सब श्वासें ध्वनित हैं। यहाँ हम कलम के हृदय को असीम कहते हैं और सभी वर्ण्य विषयों को ससीम —जो उस विशाल हृदय में निवास करते हैं। यही हृदय वह आवेष्टन है जिसमें सब कुछ लिपटा हुआ है, जिसका प्रभाव पड़ता है, जिससे जीवन मिलता है, जिससे गति होती है।

पर कुछ आशिक मिजाज पाश्चात्य सुन्दरता पर दिवाने हैं। वे देखते हैं तो विलायती आँखों से, वे बोलते हैं तो तोते की बोली में। आज जब संख्या से अधिक लक्षणकार हैं, उनकी वाणी पर भारत का 'रूढी' और पश्चिम का 'सुन्दर' शब्द चढा हुआ है। वे अमरीका के 'स्पिनगार्न' की वाणी रटते हुए कहते हैं कि काव्य का राजनीति, धर्म, समाज और आचरण से कोई सम्बन्ध नहीं, कला कला के लिये है। यदि यह भी मान लो कि कला कला के लिये है तो भी क्या कला कला के लिये होकर आनन्द के अन्तर्गत नहीं आती? ये रसवाद वृक्ष की वे कोपलें हैं जो रसाभास एवं भावाभास के आकार में कोमल और सुन्दर रहती हैं।

अर्थ में तो अनुभूति की अभिव्यक्ति ही कला है, जो विभाव अनुभाव और संचारी भाव की इन्द्रियों का कारणशरीर धारण कर स्थायी आत्मा को भाषा के परिधानों में प्रकट करती है एवं अर्थों और शब्दों की रमणीयता से अलंकृत कर नास्तिक को भी आस्तिक बनाती है। आस्तिक और नास्तिक की चर्चा तो सुनते हैं, पर मैं नहीं समझता कि नास्तिक कौन है। प्रत्येक का कोई न कोई इष्टदेव है। संयोग और वियोग के इस

दृश्य संसार से 'नास्तिक' शब्द हटा देना चाहिए। कला तो आस्तिकता का ही स्वरूप है। जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति आस्तिकता से ही हुई है और यह भी सत्य है कि कला का अलौकिक शक्तियो से अनादि सम्बन्ध है। प्रत्येक विद्या किसी न किसी रूप मे ब्रह्म से ही उद्भूत होती है और ब्रह्म मे ही मिल जाती है। भौतिक भंगुरता से दार्शनिक सत्यो को दबाने का प्रयत्न प्रतारणा है। निराकार की आकृति के दृश्य निश्चित अलौकिक शक्तियो के आवेष्टन है। सर्व प्रथम शिक्षा के माध्यम से सरस्वती पुत्र काव्य को ब्रह्म की आज्ञा हुई कि तीनो लोको मे साहित्य की व्यापकता हो। अत काव्य के प्रयोजन का बीजारोपण किया जो वसन्त, बरसात, पतझड आदि के आवर्त्तनो मे आनन्द स्वरूप है।

और मै समझता हूँ कि आनन्द प्रयोजन को सभी स्वीकार करते है। योरोप मे काव्य की परिभाषा करते हुए 'अरस्तू' ने कहा है कि कविता जीवन की अनुकृति है। 'अर्नल्ड' कविता को जीवन की आलोचना कहते हैं। 'वर्ड्सवर्थ' भावस्मरण और प्रणय प्रेरणा मानते हैं। और भारत रसात्मक सृष्टि को कला कहता है। यह रसात्मक प्रयोजन उपर्युक्त उक्तियो की आत्मा मे भी निस्सन्देह हैं। पाश्चात्य साहित्य का प्राचीन और नया रूप 'होमर' के काव्य मे है। वह कविता को दैवी प्रेरणा और कविता का प्रयोजन आनन्द मानता है। प्रभु की प्रेरणा मनःप्रसादन का रूप ले लेती हे। यह परिभाषा पाश्चात्य काव्य की ही नही और ना ही व्यष्टिवादी है अपितु अनन्त है।

आनन्द का अर्थ तादात्म्य भाव है जहाँ कुछ भेद नही रहता। आत्म रूप जीवन दर्शन ही कला की अभिव्यक्ति है। इसी अभिव्यक्ति का प्रयोजन कलाकार की चेतना के समक्ष फैला हुआ आवेष्टन है। कला की अभिव्यक्ति आवेष्टन गत आधारभूत वह अनुभूति है जिसे आज 'कला कला के लिये' कहा जा रहा है। 'कला कला के लिये' की उक्ति बिल्कुल ठीक है। कला कृति चाहे समाज की वस्तु है पर कला कला के ही लिये है। कला कृति का आविर्भाव उपासक और उपास्य भाव से ही होता है। इष्ट की प्राप्ति के लिये जो द्रावक तडप होती है वही तो कला है।

कला और कलम

आत्मा की अभिव्यक्ति और हृदय रंजन ही कला का स्वाभाविक उद्देश्य है। कलम जो कुछ लिखती है वह समाज-सुधार, चरित्र निर्माण, देशोत्थान या राजनीति की दृष्टि से नही लिखती। वह तो जो कुछ कलाकार का जीवन होता है वही लिखती है। कलाकार की राजनीतिक, सामाजिक ऐतिहासिक, दार्शनिक, मानसिक आदि दशाये जिस दिशा मे होती है वही दिशा कलम के रंगो से कला कृति का रूप ले लेती है।

कला का सम्बन्ध स्वभाव और यथार्थ से है। आदर्श उस मे स्वत: रहता है। सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का साधन कला शब्द परिपूर्ण है।

कलम की गति सौन्दर्य साधना और जीवन दर्शन है। जो यह कहते है कि वह कला कला ही नही जिसमे दर्शन, समाज और धर्म आदि नही, उन्हे कला की अनुभूति नही। वे समाज सुधारक और विद्वान हो सकते है पर कलाकार नही। कला शास्त्रीय और कल्पना किशोरी है। कला कहीं दोषपूर्ण है ही नही। कलम की मंजिल और लक्ष्य मे असत्य होता ही नहीं। कलम मे अस्वाभाविक और अशिवम् आता ही नही। कलम का उद्रेक स्वाभाविक हृदय है। उस से सुन्दर ही उद्भूत होता है। सत्य और शिव तो सुन्दर मे स्वयमेव इस प्रकार रहते हैं जैसे आंखो मे ज्योति। और जहां कलाकार सुधारक, शिक्षक और राजनीतिज्ञ की भाषा बोलने लगता है वहां कला नही रहती। कला की कलम जो कुछ कहती है वह अनुभूति का सुन्दर आकार मात्र है। इस से परे की भाषा बोलने वाला स्वाभाविक कलाकार नही कहा जा सकता। उस मे कृत्रिमता होगी। कलाकार की कलम जब इन विषयो का निदर्शन करती है तो वह वही हो जाती है। उसका जीवन उसी विषय मे मिलकर उसी का मधु बन जाता है। कलम तद्रूप हो जाती है। उसका अप्रकृत प्रकृत सौन्दर्य होकर हृदय रंजन करता है।

कलम की खूबी उपदेष्टा बन कर भाषण झाड़ने मे नही, ना ही उसका गौरव राजनीति की कर्कशता मे कॉटे लपकने मे है। कलम का सौन्दर्य स्वाभाविक सत्य और ऊँची कल्पना मे है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या कला का प्रयोजन राजनीति, धर्म, समाज आचार व्यवहार आदि से कुछ नही? कलम केवल मानसिक अययामी की

पूर्ति है ? कला की परिभाषा में तो कला निस्सन्देह मानसिक उद्रेक है। पर समाज धर्म, इतिहास, राजनीति, आचार व्यवहार आदि से व्यक्ति का सम्बन्ध है। उसके जीवन का माध्यम केवल सौन्दर्य ही नहीं। वह मानसिक व्यायाम से ही पुष्ट नही हो सकता। माना कि कलाकार वेदना का मूर्तरूप है। कला की अभिव्यक्ति पीडा है। मानसिक दुःखो की कहानी ही कला कहलाने लगती है। कला की कलम आँसुओं के ही चित्र उतारती है। लेकिन व्यक्ति लोक का निवासी है। उस की स्वतन्त्रता परिधि मे है। वह लोक से सम्बन्धित ही नही, लोक और लोक के विधान का भागीदार भी है। अत व्यक्ति को लोक के लिये करना अनिवार्य है। वह समाज के प्रति कर्त्तव्यों से बँधा हुआ है। केवल कला ही जीवन का माध्यम या आवेष्टन कैसे हो सकती है ?

अत: कलम का काम कला के साथ साथ जीवन भी है। उसे समाज और समय की हर आवश्यकता को आँकना होगा। उसका धर्म निर्भीक और निष्पक्ष होकर निर्णय करना है। उसे राष्ट्र समाज संसार और राजनीति आदि की हलचलों पर समालोचिका बन कर लिखना चाहिये। लोक का पोषण, स्वास्थ्य विकास और उद्देश्य कलम पर ही निर्भर है। कलम की शक्ति ही संसार समाज और राष्ट्र की शक्ति है। जिस समाज, जिस राष्ट्र और जिस युग की कलम थोथी है, समझ लो कि वह प्राणहीन है। जिसकी कलम टूट चुकी, उसकी कमर टूट चुकी। जिसकी कलम जिन्दा है। उसकी भावना जिन्दा है। जिसकी कलम मे प्राण हैं उसी की भाषा मे प्राण है। जिसकी कलम जवान है उसी की जिन्दगी जवान है। जिसकी कलम नहीं उसकी प्रेरणा नही और जहाँ कलम तडपती है वहाँ हर बात आँसू बहाती है।

कला का सौन्दर्य केवल भावपक्ष की प्रतिमा मे ही नही अपितु बुद्धि पक्ष की रचनात्मक सृष्टि मे पूर्ण है। वह कला कला नहीं जिस से व्यक्ति, समाज और संसार का रंजन और विकास न हो। कला शब्द मे रचना एवं विस्तार है। कला इतनी विस्तृत है कि उसे किसी एक परिभाषा मे बाँधना संज्ञा को पकडना है। वैसे कला को हम चेतना कह सकते हैं। यह चेतना क्रियात्मक जगत मे भी होती है और भाव जगत मे भी।

जैसे 'गाँधी जी' क्रियात्मक जगत के कलाकार थे और 'कबीर' 'प्रसाद' तथा 'प्रेम चन्द' भाव एवं कथा जगत के। कर्मठ कलम को वह तैयार भूमि देता है जिस पर कला के फूल खिलते है। कलाकार समस्या और हल को लेख-लोक मे दर्शाता है एवं कर्मठ समस्या और हल को रचनात्मक कार्यों से क्रियात्मक रूप देता है। कर्मठ एवं कलाकार संसार और कला के मधुमास और ऋतुराज हैं।

कलम अपने काल की तस्वीर है। वास्तविकता यही है कि कलम जो देखती है उसकी आलोचना कर वह स्वयम् वही बन जाती है। पर कलम की तारीफ यह है कि इतिहास को कला बना दे, भंगुर को अभंगुर कर दे और कलम के काल की तस्वीर समय की धूलि मे धुँधली न हो। अमरता ही कलम की निशानी है।

कला की कलम अतीत को नया करती है। कलम के चित्र कभी पुराने नही होते। 'कालिदास' की कलम ने जो कुछ लिखा, 'भवभूति' की भाषा मे जो कुछ व्यक्त हुआ, क्या वह कभी 'पुराने' विशेषण से पुकारा जायेगा? आदि कवि 'वाल्मीकि' और महर्षि 'व्यास' की कलम ने जो कुछ दिया है क्या वह कभी अभाव बन सकेगा? कवीन्द्र 'रवीन्द्र' तथा 'जयशंकर प्रसाद' ने जो कुछ लिखा है क्या अमर सत्य नही? क्या इन अमूल्य लेखनियो पर कोई धूलि जम सकती है? यदि मुझ से पूछा जाये कि सम्राट् और कलम मे किसका आसन ऊँचा है तो मै कहूँगा—कलम का। सम्राट् समय की धूलि मे धूलि बन जाता है और कलम समय की चट्टानो पर ऊँची चढती है।

कलम की साधना सब के लिये होती है। इस साधना मे युग झलकता है, व्यक्ति झलकता है और भविष्य झलकता है। कलम अभिव्यक्ति की शैली ही तो है जो अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष करती है।

कलम सब की भाषा है, जिससे भावनाये व्यक्त होती है, सिद्धान्त गूंजते हैं, इतिहास बोलता है। काव्य, दर्शन, न्याय, अन्याय सब कलम की नोक से चित्रित होते है। भाषा लिपि और भावनाये कलम की ही श्वासे हैं। कलम की कहानी उद्वेचिका एवं मरीचिका है।

पर जैसा कि शुरू मे लिखा है कि कला सिद्धि है कलम साधना। साधना के बिना सिद्धि नही हो सकती। भारतीय साहित्य की कलम

साधना की कलम थी । लेकिन कभी थी ! आज नहीं ! आज तो वह नटी सी बनी हुई है । गाँधी जी ने एक बार कहा था कि आधुनिक हिन्दी साहित्य थोथा ही है । वास्तव मे आज हमारी भारती भटक रही है । इसके दो कारण हैं । एक तो लम्बे समय की परतन्त्रता और दूसरे हमारी पाश्चात्य प्रकृति । एक और कारण मैं मार्क्स के सिद्धान्तानुसार आर्थिक संकट भी मानता हूं ।

पराधीनता ने तो हमे अपनेपन से भी अलग कर दिया । 'सूरदास की काली कमली' पर दूसरा रंग चढ गया । हम अपने पथ से बिछुड कर गोलाकार ढलाव पर रपटने लगे ।

और जैसे संगति से शराब पीने या अन्य किसी व्यसन की लत लग जाती है वैसे ही अंग्रेजी संगति से हमारी प्रकृति पश्चिमी हो गई । हमारी मौलिकता पर अंग्रेजी साहित्यिकों ने रंग फेर दिया । फलत. वह भारतीय कलम जिसकी आस्तिकता प्रत्येक कला का उद्‌भव ब्रह्म कहती थी अब अंग्रेज़ी अनुकरण कहने लगी । सरस्वती की उपासना से फल देने वाली कलम विदेशी धारा मे डूब गई । वह अंग्रेजी की मानस पुत्री बन कर नाचने लगी । महर्षि व्यास, वाल्मीकि, कालिदास तुलसी, विदुर और कौटिल्य जैसे कल्पवृक्ष एवं चमत्कार जिस देश मे हो आश्चर्य तो यह है कि वह देश दास कैसे हुआ ! उस देश की कला पिछडी कैसे ! जिस देश को इतना मिल चुका था वह देश सर्व शक्ति सम्पन्न होना चाहिये था । पर न जाने कैसे कलम आगे नहीं बढी ? हमारे समुद्रो मे से विदेशी रत्न निकाल निकाल कर ले गये और हम अन्धे हो कर बैठे रहे ।

आर्थिक संकट से भी साहित्य की हानि हुई है । आर्थिक जंजीरों ने भी कलम को बाँध कर डाला है । कहा जा सकता है कि अर्थ के अभाव मे निर्माण का अभाव हो गया । कलम साधना के लिये साधन ढूंढती ढूंढती ही मर गई । वास्तव मे कलम की दशा मजदूर के आँसू से भी करुण है । भौतिकता के भोगी भक्त भावनाओं को कुचलना ही जानते हैं और मारते हैं अपने पैरों मे आप कुल्हाडी ।

यह बात नही कि भारतीयों के पास हृदय नहीं है, बुद्धि नहीं है, बल नहीं है, भूमि नही है। मगर कुछ है और यह भी अमर सत्य है कि समुद्र में से कितना भी जल भर भर कर ले जाओ या फेको पर समुद्र तो सूखता नही। अर्थात् भारतीय साहित्य की अमरता महर्षि व्यास, वाल्मीकि, कालीदास, तुलसी, कवीन्द्र रवीन्द्र, शरत, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द प्रभृति कलाकारों मे प्रकट है। बस बात यह है कि कलम श्वास की बीमारी से खटिया पर पड गई। वह कविता, कहानी और उपन्यास से ऊपर उठना नहीं चाहती। कलम की यह मस्ती वासनामयी है, और यह वासना आह भर कर रह जाती है।

कलाकार का एक हाथ कलम पर है और दूसरा हाथ बच्चों के पेट पर। एक हाथ से आंसू पूछता है और दूसरे हाथ से लिखता है। और इस पर मैं कहता हूँ कि आज की कलम घिसी हुई है। वस्तुत: दोष कलम का नहीं, कलम के मधुपों का है जो मधु पी कर घूरते हुए चले जाते हैं।

और फिर इस पर भी साहित्यिक गुटबन्दियां! सच्चाई कलम से दूर भागती जा रही है। दलबन्दी की दलदल में साहित्य को खुले दिल से धकेला जा रहा है। पक्षपात की भट्टी मे भावनायें झुलस रही हैं। पर कोई आंखें खोलने को तैयार नही। स्वार्थों के सांड बुरी तरह से लड रहे हैं। और इस लडाई में कुचला जा रहा है सारा सत साहित्य-जगत। समस्त साहित्य मठाधीशों की मुट्ठी मे है।

कलम से कुछ चाहते हो तो कलम के लिये कुछ करो। सूखी कलम से चित्र नहीं बन सकते। यदि गणराज्य के गौरव के अनुसार साहित्य चाहते हो तो साधना के लिये साधन दो और तोड फेंको उस कलम को जो साधना नहीं कर सकती। कलम में कृत्रिमता नहीं चाहिये। सच्ची कलम ही श्रद्धा है। मौलिकता ही कलम की खूबी है।

आओ! मौलिकता से उपजे हुए अर्चना के फूल ले कर भारती की पूजा करने चलें। सरस्वती का हंस साधना के मोती चुगना चाहता है।

साहित्य और नारी

सृष्टि का उद्गम कामिनी है और कामिनी ही कला को जन्म देती है।

वह मधुर सौन्दर्य जो कभी नीरस नहीं होता कामिनी के गुलाबी मुख-कुसुम का पराग ही तो है।

संसृति की सुन्दरता नारी है। प्रकृति की गीतिका नारी है। ऋतुओं की रमणीयता नारी है। नारी के रूप की मधुरता कभी फीकी नहीं पडती।

कामिनी के अधरों में अमृत है। कामिनी की आँखों में आकर्षण है। कामिनी के स्पन्दनों में जिन्दगी है, और कामिनी ही मरीचिका है जिसकी सुधि में प्राण दौडते ही रहते हैं।

स्त्रीत्व की गरिमा, करुणा की कोमलता, भूल की रेतीली भित्ति और गति की प्रतीक नारी साहित्य की प्रेरणा है।

अनुभूति जब हृदय से छलक कर प्रकृति की प्यालियों में छलकती है तभी तो मानस मन्थन से काव्य उत्पन्न होता है। प्रेरणा और पूर्ति के मान-सरोवर में तैरता हुआ कवि का हंस जिन मोतियों को चुगता है वे आँखों के आँसू कहो या कामिनी के स्नेह-कण, पर पलते हैं प्रेम की सीपियों में और थिरकते हैं कामिनी के कपोलों पर। दैव की सुन्दरता, चेतना की वरदान श्री, प्रेम की प्रतिमूर्ति और प्राणों की छटपटाहट नारी ही कला की सृष्टि, सुन्दरता और सर्वांगीणता है। काव्य की स्वर लहरी कामिनी है। काव्य की प्रेरणा कामिनी है। काव्य की सुकुमारता कामिनी है। काव्य की अभि-व्यक्ति कामिनी है। नारी को दूसरे शब्दों में शक्ति, सुन्दरता और प्रेरणा कह सकते हैं। प्रकृति एवं भाव जगत में प्रतिबिम्बित आत्मा नारी ही है। ललित कलाओं की अमरता इसी श्रद्धा और बुद्धि की कोमल आत्मीयता से व्यक्त होती है। नारी की मोहिनी किसका मन नहीं मोहती? इसमें अमृत है, सौन्दर्य है और संगीत है। यही वह छलना और कलना है जो कल्पना की पहुंच से भी परे, मुस्कान से भी मधुर और प्रत्यक्ष से भी पास है।

नारी एक रहस्य है जो हर स्पन्दन मे प्रतिबिम्बित है, पर पक्ट में नहीं आती। 'तुलसी' के शब्दों में—

'विधिहु न नारि हृदय गति जानी'

नारी में आकर्षण है, आकर्षण में संसृति बँधी हुई है। संसृति मे दु:ख और सुख है। दु:ख और सुख की अभिव्यक्ति ही कला है।

नारी के नेत्रों में अमृत, हलाहल और मद है। नारी के अधरों पर गीत है। नारी के कपोलों पर भावना की क्रीडा है। नारी के भाल पर भावुकता का चन्द्र–चापल्य है। नारी की अलकों में आदि और अन्त की बिन्दी है। नारी की जवानी बूढ़े को जवान और जवान को बूढ़ा बना सकती है। नारी के इंगित में सृजन और प्रलय है।

नारी का लोहा सब मानते हैं। कौन ऐसा अद्भुत है जिसे नारी ने परास्त नहीं किया? कौन ऐसा है जिसे नारी ने जिन्दगी नही दी? नारी की कल्पना अथाह है। नारी का सौन्दर्य अथाह है। नारी का हृदय अथाह है।

इस रहस्यमयी की कहानी अदभुत है। इसी छवि मे कला की कलम का जन्म होता है। स्त्री और पुरुष की प्रणय भावना ही साहित्य की ध्वनि है। इसी रोमांस की रमणी से वेदना का अतल उद्रेक होता है। यही दिव्या सम्वेदना की मीमांसा है। यही स्नेह से प्रज्वलित दीपशिखा है और यही मुक्ति। यही सुख है और यही आँसू।

संयोग का सुख, समाज का संघर्ष, संसार की सिद्धि और विरह के आँसू चुगने वाली कलम नारी ही के इश्क की दीवानी होती है। नारी ही कवि की तड़प है। नारी ही जीवन का तूफान है। नारी ही मँझधार और मँझधार की पतवार है। नारी ही नर्क और नारी ही स्वर्ग है। नारी ही संसृति की सुहाग बिन्दी और नारी ही नाव और गति है। नारी मे खो कर नर खोता नहीं, पाकर निकलता है। इस उलझन मे कलाकार जितना उलझता है उतनी ही उसकी कला सुलझती है। प्रणय मे प्यास और प्यास मे प्रेम प्रकट होता है और यही साहित्य की गति है।

नारी साहित्य ही नहीं संसार की चेतना है। यही माया है, यही ममता है, यही मोह है और यही मुक्ति। हर कला इसी के इंगित पर सजीव

है। यदि चलचित्रों में नारी की लुभाने वाली सूरत और प्यास बढाने वाला कण्ठ न होता, या प्रणय भावना पर्दे पर न आती तो वहाँ धूल ही उडती। यही तथ्य प्रत्येक कला, हर स्पन्दन और सब क्षेत्रो के लिये है। नारी ही भोगी बनाती है। नारी ही योगी बनाती है। और नारी ही वियोगी बनाती है। एक शब्द मे नारी को चेतना कह सकते है और यही चेतना साहित्य की चेतना है।

रीति ग्रन्थो मे शृंगार रस को रस राज कहा है। इस रस राज की रानी कामिनी है जो प्रकृति के परिधानो से चमत्कृत, अर्थों के अलंकारो से अनमोल और भाषा की भव्यता मे सजी खडी है, जिस ने चेतन ही नहीं जड को भी खींच रक्खा है। नारी के नयनों मे कविता है। नारी के अधरो पर कविता है। नारी के हृदय मे कविता है। नारी के स्पन्दन मे कविता है। साहित्य की सृष्टि नारी से होती है।

नारी वह आकर्षण शक्ति है जिसकी ओर जड़ चेतन स्वयम् खिचे चले जाते है। नारी ही मनुष्य को सुख देती है, नारी ही शान्ति है, और नारी ही वह विरह देती है जिस की सीमा नही, जिससे कलाकार कलम ले कर पीडाओ की कौंध में तैरता हुआ लिखता है।

विरह ही साहित्य की सृष्टि है। विरह की व्यंजना ही कला है। यह ध्रुव सत्य है कि कलाकार वियोगी होता है। वह जो कुछ अमर लिखता है वह विरह की छटपटाहट मे लिखता है। रूप का चितेरा कलाकार चिता के शोलो मे चित्र खीचता है। उसकी तडप, उसकी आह, उसकी ऊबी हुई ज़िन्दगी – यही काव्य है। और इस काव्य की ज़मीन नारी होती है। आप किसी भी कलाकार के जीवन-पृष्ठ पलटिये, वह नारी के स्पन्दनो पर गाता हुआ मिलेगा। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जाति, प्रत्येक देश और प्रत्येक युग इस का प्रत्यक्ष है। हर कवि को प्रेरणा नारी से मिली है।

संसार की सभी भाषाओ के साहित्य मे नारी की व्यापकता है। यह आनन्दमयी, श्रद्धामयी, भावमयी और चिन्तामयी है। भारतवर्ष मे नारी की महिमा सर्वोपरि है। जननी के रूप मे यह पालन पोषण करती है। पत्नी के रूप मे जन्म देती है। भगिनी के रूप मे उत्साह की सृष्टि करती है।

शक्ति के रूप में यह रक्त वर्णिका ललकार लेकर उठती है। एवं प्रेयसी और और कोमलता के रूप में साकार हो यही सुन्दरी साहित्य की सृष्टि कराती है। इसी की अंगुलियों के इंगित से कलाकार की कलम चलती है। नारी ही तो चित्रकार की तूलिका है, । नारी ही शिल्पी की मनोहर मूर्ति है। नारी ही का कंठ संगीत के स्वर में तरंगित होता है और नारी ही वास्तु कला का वह अलौकिक सौन्दर्य है जो आगरा के यमुना तट पर 'ताज महल' के रूप में जगमगा रहा है। प्रेम की वह निशानी ही तो काव्य की प्रेरणा बनकर कितने ही कवियों के हृदय से शब्दों के परिधानों में प्रकट हुई है।

प्रत्यक्ष यह है कि ललित कलाओं की प्रेरणा नारी है। नारी कलाकार के लिये उलझन और संसार के लिये सुलझन एवं सिद्धि है। कवि की नायिका स्वामों की स्पन्दित भाव सुन्दरी है। साहित्य के इतिहास में हम इसी अलौकिकता के दर्शन करते हैं। यदि कामिनी और काव्य की तस्वीर खींची जाये तो हम कहेंगे कि कामिनी की आत्मा जीवन है और कला की आत्मा रस। वह शरीरमयी है तो यह लिपिमयी। वह विमलाम्बरा है तो यह भाषाधारिणी। वह आभूषणों से अलंकृत है तो यह अलंकारों से चमत्कृत। और इन दोनों की समष्टि रूप से अभिव्यक्ति ही तो कल्पना के पंखों पर भ्रमण करती है।

साहित्य में नारी दो प्रकार से है। प्रथम आत्मा रूप में तथा दूसरी पात्री रूप में। अर्थात् नायिका की व्यापकता एवं बहुरूपता अभिधात्मक और लक्षणात्मक है। वर्णनाकार में साहित्य के पृष्ठों पर नारी का आरम्भ हम सृष्टि के आदि से पाते हैं। माया रूप से यही संसृति और प्रगति है। दार्शनिक, पौराणिक, वैदिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों में नारी की तालिका बहुत लम्बी है। गद्य और पद्य साहित्य में यद्यपि सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की त्रिवेणी नारी है, तथापि सुन्दर रूप में यह जितनी सजीव और प्रत्यक्ष है उतनी सत्यम् तथा शिवम् जगत में नहीं और क्योंकि भारतीय साहित्य सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का स्वरूप है उसमें नारी केवल दूसरे देशों की तरह सौन्दर्य भावना ही नहीं, अपितु त्रिमूर्ति है। रामायण की 'सीता' और 'उर्मिला', महाभारत की अनेकों देवियाँ, कालीदास की 'शकुन्तला' बौद्ध काल की 'यशोधरा', क्षत्रिय काल की राजपूतनियाँ, एवं आधुनिक काल की राष्ट्र-भक्ति की विजय ध्वजाएं साहित्य में वर्णित रही है। केवल इन्हीं

में इतिश्री नहीं हो जाती बल्कि और भी असंख्य नारियाँ साहित्य में भावनाओं की प्रतीक बनकर उदित हुई हैं। उनके आदर्श और उदाहरण अनुकरणीय एवं अभिराम हैं। भिन्न भिन्न परिस्थितियों और स्वभावों को इन्हीं पात्रों के द्वारा प्रकट किया है।

स्वर्ग की पगडंडी और नर्क की फिसलन नारी के अनुकूल तथा प्रतिकूल रूपों में है। साहित्यकारों ने नारियों के चरित्र चित्रण इन्ही स्वभावों के अनुसार किये हैं। नारी का रहस्य और आकर्षण सभी के लिये पहेली है। दार्शनिक देवताओं ने तो नारी को ही नर्क का द्वार माना है। पर कवियों की वाणी ने यह कठोर कर्म नहीं किया। वे नारी को गति मानते हैं। उनके शब्दों में नारी की वास्तविक स्थिरता व्यक्त हुई है। तुलसी ने कहा है कि नारी 'सहज जड अज्ञ' है। और भी कवियों ने नारी के इस अस्थिर स्वभाव को स्थान स्थान पर कहा है। पर ये रूप आध्यात्म लोक के लिये ही आदर्श माने जा सकते है। व्यवहारिक रूप में नारी की गरिमा इस प्रकार अवहेलित कर कलम को असंयत करना है। व्यवहार में हम नारी को यद्यपि चंचल देखते हैं और साहित्य की आदर्श नारियों में भी यह चंचलता प्रत्यक्ष हुई है, पर यदि नारी जाति के इतिहास तथा साहित्य के नारी तत्वों का मंथन किया जाए तो निश्चित ही वे रत्न जिन्हें हम ललित कलाएं कहते हैं इस रहस्यमयी सागरिका से ही निकलते हैं।

साहित्य और संसार की नारी अश्रु निर्झरणी और पयस्वनि धारा है। गुप्त जी के शब्दों में—

> अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी,
> आँचल में है दूध, और आँखों में पानी।

विस्तार के भय से सारे साहित्य को न टटोल कर हम 'प्रसाद' साहित्य की नारी के दर्शन कराते हैं। यह अखण्डित शब्दों से कहा जा सकता है कि प्रसाद साहित्य की नारी पूर्ण है। 'कामायनी' काव्य की 'श्रद्धा' मर्त्य लोक की अमृतमयी सुन्दरी तथा आनन्द लोक की रसात्मक उक्ति है। कामायनी की श्रद्धा इतिहास को स्वयम् में समाकर प्रकट होती है। वह अनुभूति और आकार है। वह भावना और अभिनेत्री है। वह प्राणी जगत

की भाषा और दर्शन जगत की सत्या है। स्वभाव की प्रत्येक कम्पन के रूप में वह आकर्षण एवं आश्रय है। मन के प्रतीक 'मनु' को मर्त्य लोक के टेढे मेढे पथों पर दीपक दिखाती है। ऊबी हुई ज़िन्दगी मे वह शक्ति बन कर कौंधती है। विनष्ट सृष्टि मे बीज बन कर वह नए संसार की रचना करती है। शिव और सुन्दर से शृंगार कर वह मनु को रिझाती है। फलत प्रलय और चिन्ता से विलोडित मनु कर्म क्षेत्र मे अग्रसर होता है, और जब बुद्धिवाद की चंचला उसके हृदय को छलती है, 'इडा' का आकर्षण उसे मोह लेता है। ईर्ष्या की धधकती हुई आग से झुलसा हुआ मनु जब इडा प्रदेश का सम्राट् कहलाता है तो जीवन की संघर्षमयी हलचले सुख शान्ति को डस लेती है। मनु तिमिरावृत हो जाता है, लक्ष्यहीन होकर गिर पडता है, क्षत विक्षत होकर छटपटाता है। तब बुद्धि से बलात्कार करने वाले मनु को नारी स्वभाव की प्रतिमूर्त्ति श्रद्धा ही सहारा देती है। वह मनु की सम्बला बन उसे आनन्द लोक तक ले जाती है। रहस्य, काम और इच्छा का भेद प्रत्यक्ष करती है। यह श्रद्धा ही दृश्य और अदृश्य लोक की उन गांठो को खोलती है जो किसी कलाकार मे आज तक नही खुली। 'कामायनी' काव्य का प्रत्यक्ष, ज्ञान लोक, इच्छा लोक, कर्म लोक मे है। एवम् श्रद्धा भौतिक और आध्यात्मिक जगत की इन भावनाओं मे आत्मसात् हुई है। 'कामायनी का यह पद्य—

> "ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यो पूरी हो मन की।
> एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की।"

इस वाणी से मर्त्य और स्वर्ग लोक तथा नारी रूपा श्रद्धा की गरिमा अमर है। प्रसाद साहित्य को नारी स्वाभिमान की अमर कला है। कामायनी की 'श्रद्धा' स्कन्दगुप्त की 'देवसेना' तितली उपन्यास की 'तितली' एवं आकाश दीप की 'चम्पा' प्रभृति नारियाँ शक्ति की साक्षात तस्वीरे है। स्त्रीत्व को पुष्प सी कोमल भावना और वज्र से कठोर निर्ममता केवल 'कामायनी' काव्य की ही क्रम अंलकारिका नही है, अपितु आधुनिक साहित्य मे तो नारी आत्म रूप हो गई है। वह इतिवृत्तात्मक न रह कर भावात्मक बन गई है। अंग्रेज़ी साहित्य मे 'सेक्स' इसी स्वरूप का लक्षण है। स्त्री पुरुष की प्रेरणा बन कर नारी ही काव्य के पृष्ठो पर चित्रित होती है। छायावाद के रूप मे जो

भावनाएं व्यक्त होती हैं उनकी प्रेरणा भी वही है। अंग्रेज़ी ही नही प्रत्येक भाषा के साहित्य की प्रेरणा कामिनी है। व्यवहारिक शब्दों मे नारी का तिरस्कार करना केवल दार्शनिकों को ही शोभा देता है। कवि के संसार में तो वह श्रद्धा है।

शब्दों की सीमा मे नारी के सम्पूर्ण तत्वों को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। किन्तु यह कहते हुए तनिक भी नहीं सकुचाना चाहिए कि नारी ललित कलाओं की बरसात है, जिस वर्षा से सत्य और दर्शन लोक के अक्षय फूल खिलते हैं।

नारी क्या नहीं कर सकती! नारी की झनकार मे सारे स्वर हैं।

युगों की पगडण्डी पर ललित कलायें

कौन है वह विलक्षण कलाकार जिसकी कृति मे सौन्दर्य, आकर्षण और आनन्द है? जो तर्क से परे और भक्ति के सत्य आकार में ओंकार है। जिसकी प्रकृति का सौन्दर्य कभी पुराना नहीं होता। जिसके चित्रो मे तन्मयता है। जिसकी कृति में समस्त कलाओ का नर्त्तन है। जिसके रसानन्द मे अनहद नाद सुनायी देते हैं। जिसकी अनुभूति होने पर जानने के लिये कुछ भी शेष नहीं रहता। जिसके इन्द्रजाल में अद्भुत कलायें हैं। जिसकी रचना में असीमित प्रेरणा है। जिसके स्वर में कभी नीरसता नहीं आती। जिसके गीतों की गति का तार कभी नहीं टूटता। जिसकी तूलिका से भरे हुए रँग कभी फीके नहीं पड़ते। जिसकी सृष्टि अनगिनत सन्ध्याओं की छायाओं में भी नहीं खोयी। रात और दिन के आवर्त्तनों में जो नयी प्रगति सी अमर वीणा बजा रही है। परिवर्त्तन की पीढियो पर भी जिसकी प्रकृति मृत्युंजया है। जो शील शक्ति और सौन्दर्य का सामंजस्य लेकर कला रूप मे प्रकट होता है।

ललित कलाओं के तात्त्विक केन्द्र कलामय परमात्मा की इन्द्रजालिक लीला किसे नहीं लुभाती। जिसमें काव्य भी है और संगीत भी। जिसमें चित्र भी हैं और मूर्तियाँ भी। जिसमें वास्तु है और वस्तुत भी। जिसकी कृतियों मे कलायें जीवन की अभिव्यक्तियों पर हैं। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के उस अद्भुत आकार का आकर्षण अलौकिक है। उस निराकार की अनुभूति रंजित मूर्त्तरूप दर्शनीय संसार है। एवं जो कुछ दिखाई देता है और अनुभव किया जाता है वह सब उसी की कला का प्रसाद है। समस्त कलायें उसी की प्रकृति में क्रीडा करती हैं।

तो क्या ललित कलाओं को समय की किसी विशेष परिधि में बाँधना उचित है? और क्या सीमा से अलग करना भावुकता का प्रवाह नहीं कहा जायेगा? माना कि कवि, गायक, चित्रकार, शिल्पकार भी उसकी रचना हैं।

पर कलाकार जो कुछ सोचते हैं, निर्माण करते हैं, वह सब अनन्त कलाकार की भावनाओं का दिग्दर्शन मात्र ही है। ईश्वर की प्रकृति तथा कलाकार का स्वभाव एक ही है।

अनुमान एवं आत्मप्रेरणा के आधार पर कहा जा सकता है कि ललित कलायें अनादि हैं जो अनन्त कलाकार के स्पन्दनों में प्रतिबिम्बित एवं ध्वनित होती हैं। सरिताओं के कल कल शब्दों एवं निर्झरों की सरस ध्वनियों में मधुर संगीत है। ऋतुओं एवं रंग बिरंगी प्रकृति के चित्रों का सौन्दर्य कभी फीका नहीं पडता। दृश्य और अदृश्य की आत्मा ही तो काव्य का जीवन है। मेघों की मनोहर मूर्तियाँ, रहस्यपूर्ण पर्वत एवं समस्त स्थल-भाग वास्तु मूर्ति के प्रतीक हैं। उस कलाकार की छटायें छवि को भी मोह लेती हैं। रुद्र के तांडव नृत्य आदि कलाये ही तो हैं।

पर देखना तो यह है कि मर्त्यलोक की मनोहर सृष्टि मे छवि के स्वरूप अमृत पुत्र मानव की ललित कलाओं मे क्या अभिव्यक्ति है? भौतिक भंगुरता में अभंगुर आनन्द युगो की पगडण्डी पर कैसे कैसे निवास किये हुए है? इतिहास के पृष्ठों पर ललित कलाओं की क्रीडा किस प्रकार है? अतीत की स्मृतियों में ललित कलाओं की ध्वनियाँ क्या हैं? उत्थान और पतन के पदचिन्हों मे कलाओं के चित्र किस प्रकार मिलते हैं?

ललित कलाओं के केन्द्र उस अभंगुर की लीला का इतिहास बुलबुले जैसे भंगुर मनुष्य की सीमा से बाहर है। वह जो कुछ देखता है अतीत की स्मृतियों और साहित्य के आधार मात्र पर ही। उसका प्रत्यक्ष अनुमान साहित्य तथा खँडहर ही हैं।

दार्शनिक तथ्य भिन्न भिन्न विचारों में पहेली से बने हुए हैं। युगों की सीमाओं की तिथियाँ किसी ने निश्चित नहीं कीं। कौन जानता है कि कब से ये दिन रात चले आ रहे हैं! कहते हैं कि पुराणानुसार भगवान राम का युग पाँच लाख वर्ष पूर्व का है। न जाने कितनी बार प्रलयों मे कलाओं का इतिहास बहा होगा। अतः यद्यपि भौतिक दृष्टि से कलाओं का आदि युग और स्वरूप निश्चित नहीं किया जा सकता तथापि यह तो सत्य ही है कि ईश्वर स्वयम् सर्वव्यापक पूर्ण कलाकार है। उसकी तूलिका ने सम्पूर्ण

कलाओ को जन्म दिया है। उसकी त्रिगुणात्मक प्रकृति में अशेष कलायें हैं। एवं जब से वह है तभी से ललित कलाये हैं।

पुराणों के अनुसार सत्युग, द्वापर, त्रेता और कलियुग उसी कलाकार के इंगित हैं। इन चारों युगों में से ललित कलाओ के शुद्ध और पूर्ण स्वरूपो को निकालने के लिये वास्तव में आज पुनः महर्षि 'वेदव्यास' की आवश्यकता है। अथक अनुसंधान, व्यय, ज्ञान एवं मनचाही आयु से ही यह निधि साध्य हो सकती है। पर स्थूल रूप में मैं इस लेख को तीन युगों में बाँटता हूँ। प्राचीन काल, मध्य काल और अर्वाचीन काल। इन तीनों कालों में से भी विशेष विशेष काल अलग अलग करने होंगे। आओ! इन युगों के पृष्ठों पर ललित कलाओं को टटोलने चलें।

सब से पहिले हम अत्यन्त प्राचीन आदि काल की ओर आते है। वेदो को आदि साहित्य माना है। 'सामवेद' सारा संगीत ही है। साथ ही वेदों में नाटक के तत्व भी हैं। काव्य तो वेद का ही भाव रूप है। भगवान के साकार रूप के सामने मूर्ति कला का और कौनसा आदर्श रक्खा जा सकता है? चित्रमयी प्रकृति के आगे क्या और चित्र ठहर सकते हैं? एवं चित्रकला की उत्पत्ति के बारे में एक पौराणिक कथा है जिसके अनुसार विश्वकर्मा ब्रह्मा को ही चित्रकला का पिता माना है। कथा है कि एक राजा की भक्ति से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसके मृतक पुत्र का चित्र बना कर उस में प्राण भरे थे। अतः ब्रह्मा चित्र कला के आदि गुरु हुए। ऋग्वेद में चमडे पर बने हुए अग्निदेव के चित्र का उल्लेख है। इन आदर्शों से इस कला की प्राचीनता का पता चलता है। और वास्तु कला का स्वरूप तो समस्त धातुओं से मण्डित, सरिताओ, शैलो एवं सिन्धुओं से सुन्दर पृथ्वी के समक्ष किस को कहूँ? इन्हे चाहे ललित कलाओं के स्रोत कहो चाहे पूर्ण स्वरूप। किन्तु हम राजा इन्द्र का नाम सुनते चले आ रहे हैं। इन्द्र के अखाडे की कहानियाँ भी बहुत प्रचलित हैं। इन्द्र की अप्सराओं के संगीत और नृत्य की तुलना किससे की जा सकती है? जो ऋषियों को भी मोह लेती थी। जिनके गीतों से देवताओं का मनोरंजन होता था। और यह तो आप स्वयम् कल्पना करिये कि जिन गीतों ने ऋषियो को लुभाया होगा वे रस राज

शृंगार रस के कितने पूर्ण काव्य होंगे! तथा इन्द्रपुरी का निर्माणकर्त्ता वास्तु कला का कितना दिव्य पारंगत होगा! चित्र कला के आदर्श के लिये दमयन्ती की सखी का आदर्श अनुपम है, जिसने दमयन्ती को सारे देवताओं एवं नल के चित्र बनाकर दिखाये थे। इस के अतिरिक्त चित्र कला के लिये लिपि का उदाहरण आदि कहा जा सकता है। लिपि उन आकृतियो के समूह को कहते हैं जिनमे मन के भाव चित्रित होते हैं। ऋषियो द्वारा अक्षरो का निर्माण चित्र कला ही तो है। मूर्ति पूजा तो भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम आस्था है। सनातनधर्म मूर्त्ति कला का अनादि परिचय देता है।

अपनी पहुँच की परिधि के कारण अनेकों सीढियो से गिर अब हम राम काल की ओर आते हैं। वह युग कलाओं का आदर्श युग कहा जाता है। उस काल मे जिसे हम राक्षस कह कर सम्बोधन करते हैं वह रावण भी सारी विद्याओं का विशेषज्ञ था। उस महापण्डित रावण के सामने भगवान राम को भी क्या क्या सहारे लेने पडे! क्या यह कहना असंगत होगा कि राम और रावण के काल में ललित कलायें जाज्वल्यमान थीं। आदर्श के लिये वास्तु कला का उज्ज्वल रूप हमें रावण की सोने की लंका मे मिलता है। स्वर्ण धातु का इतना सुन्दर महल क्या इतिहास मे और कोई कहा जा सकता है! और देखिये राम की राजधानी अयोध्या नगरी की वास्तु कलायें, जिनकी कल्पना ही चित्र उपस्थित कर देती है। काव्य के रचयिता आदि कवि वाल्मीकि तो ब्रह्म की तरह व्यापक है। राम काल में राम के जीवन पर उस युग का रामायण महाकाव्य कला का अभंगुर आदर्श है, और रामायण महाकवि वाल्मीकि ने अपने शिष्यो से सितारों पर गवाई थी। अतः संगीत कला का आदर्श मिलता है। मूर्ति कला के लिये सीता की वह स्वर्ण मूर्ति आदर्श है जो अश्वमेध मे राम के साथ रक्खी गई थी। एवं माता सीता का गौरी पूजा के लिये मन्दिर में जाना मूर्ति कला की महानता सिद्ध करता है। चित्रकला के लिये उर्मिला जब राम के वन जाने से पूर्व राज्याभिषेक की घोषणा होने पर चित्रो का निर्माण करती है तो उसकी तूलिका उछट कर राजसिंहासन का फूल तरासती हुई गिर पडती है। इस असगुन का काव्य मे कथन है। इससे पता चलता है कि

उर्मिला कल्पना के आधार पर कितनी पवित्र भावनाओं से चित्र निर्माण करती थी। हो सकता है यह कवि की कल्पना हो पर कल्पना की पहुँच यथार्थ से परे नहीं, तथा रामायण मे भित्ति चित्रो का उल्लेख तो है ही। उस काल के ये आदर्श सूत्र रूप से ही उपस्थित कर अब हम महाभारत काल मे आते हैं।

महाभारत काल मे ललित कलाओ के आदर्श अनुपम मिलते हैं। काव्य कला के आदर्श तो महामुनि कविकुल गुरु व्यास महा महा है ही। साहित्य के नाम से जो कुछ 'व्यास' दे गये वह पूर्ण है। उनके बाद जो कुछ भी काव्य के नाम पर रचा गया है उस सब के बीज उन्हीं के काव्य-कानन से लिये गये है। क्या 'व्यास' जैसे महाकवि और 'गणेश' जैसे लघुलिपि लेखक दूसरे भी होगे ? वास्तु कला के लिये हम 'मयदानव' द्वारा निर्मित 'इन्द्रप्रस्थ' अनुपम मानते है। 'इन्द्रप्रस्थ' ऐसा अद्भुत और सुन्दर था कि जो इतिहास मे अपना चमत्कृत स्थान रखता है। 'मयदानव' ने एक ऐसा अद्भुत महल बनाया था जिसे देख कर दुर्योधन जैसा चतुर नीतिज्ञ भी भुलाये मे आ गया था। उस महल का फर्श ताल प्रतीत होता था और जो पानी का ताल था वह फ़र्श लगता था। इसी पानी के ताल को फर्श समझ कर दुर्योधन इसमे गिर पडा था। तथा द्रौपदी ने कहा था कि—'रहा अन्धे का अन्धा ही' चित्रकला के लिये हम बाणासुर की 'कन्या' उषा की सहेली 'चित्ररेखा' का आदर्श उपस्थित करते है, जिसने 'अनिरुद्ध' की स्मृति मे विह्वल 'उषा' को यदुवंशियो के चित्र कल्पना से बनाकर दिखाये थे। 'चित्ररेखा' चित्रमयी चित्रकार थी और सुन्दर गायिका भी। वह सब स्वरो मे अद्भुत गाती थी। इसके अतिरिक्त संगीत कला के पारंगत स्वयम् भगवान कृष्ण थे। उन के वेणु वादन पर ग्वालाये स्वयम् को भूल जाती थी। मूर्तिकला के लिये 'एक-लव्य' की बनाई हुई 'द्रोणाचार्य' की मूर्ति का उदाहरण दिया जा सकता है। एवं 'भीम' की वह मूर्ति आदर्श मानी जा सकती है जो लौह मूर्ति धृतराष्ट्र की भेंट के लिये दी गई थी।

यदि समय और परिवर्त्तन की वायु मे अतीत के पृष्ठ ढक न गये होते तो ललित कलाओ का प्राचीनतम रूप पूर्ण रूपेण आज प्रत्यक्ष होता। लेकिन समय की शिलाओं पर न जाने किस किस ने चित्र बनाये और न

जाने किस किस ने मिटाये हैं। चित्र निर्माण ही नहीं लक्षण ग्रन्थ भी बन चुके थे। 'वात्स्यायन' के कामसूत्र मे चित्रकला पद्धति पर लिखा है। उस मे चित्रकला के — रूप, भेद, प्रमाण, भाव, लावण्य योजना, सादृश्य, तथा वर्णिकाभंग – छः अंगो का वर्णन है। चित्रकला के विषय पर एक दूसरी प्राचीन-तम पुस्तक "चित्र-लक्षण" है। अतः ललित कलाओ का प्राचीन युग वास्तव मे पीयूषवर्षक रहा है। पर अतीत की स्मृतियों के चिन्ह न मिलने से उन के स्वरूप हवा से आच्छादित हो गये है।

अब हम मध्य काल की ओर आते हैं। इस युग में हम गुप्त, बौद्ध तथा कालिदास काल को ही विशेष रूप से देख पायेंगे। गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग रहा है। निश्चय ही इस युग मे ललित कलाओ का खूब विकास रहा होगा। 'अजन्ता' की गुफाओं में हमे इस युग की चित्रकला के अच्छे उदाहरण मिलते है। प्रागैतिहासिक काल के चित्र तथा 'जोगी मारा' गुफाओ के गेरू और कालिख से बने हुए चित्र उस से पूर्व की भावनाओ का परिचय देते हैं।

किन्तु बौद्ध काल कलाओ का स्वर्ण युग मानना चाहिये। बौद्ध काल का प्रसार समस्त एशिया में ही नही योरुप के भागों मे भी रहा है। बौद्ध धर्म का प्रभाव देश विदेशों मे खूब रहा। अतः कलाओ का प्रसार भी स्वाभाविक ही था। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि जब राजनीतिक, धार्मिक हलचल होती है, जब परिवर्तनशील युग आता है तो कलाओं का भी नया जन्म होता है। नये युग की नयी कलाओ में नयी बात होती है।

बौद्ध कालीन कलाओ का प्रसार भारत, बर्मा, लंका, श्याम, जावा, चीन, जापान, तिब्बत और खोतान आदि में रहा है। वहाँ बौद्ध काल की चित्रकला एवं मूर्ति कला के उदाहरण मिले है। सत्रहवीं ईसवी के इतिहास लेखक 'तारानाथ' ने लिखा है कि जहाँ जहाँ भी बौद्ध धर्म का प्रचार था वहीं वहीं प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे। उस समय बौद्ध भिक्षु जहाँ जहाँ भी गये वही भारत की ललित कलायें भी लेते गये। "विनियन महोदय" का कहना है कि जापान के 'होरियुजी' नामक मन्दिर के भित्ति चित्रों को देख कर 'अजन्ता' के चित्रो की याद आती है।

उस काल में निर्मित 'अजन्ता' की कुशलता सदा के लिये कला की

नयी कीर्ति है। 'बघोर' नदी के पार सर्पाकार अजन्ता की गुफाओ मे भारत के अतीत की शाश्वत स्मृतियाँ अंकित हैं। इन गुफाओ के चित्रो में अतीत की कलात्मक स्मृतियाँ बोलती हुई प्रतीत होती हैं।

'अजन्ता' की उन्तीस गुफायें हैं जिनमें से छः गुफाओं के चित्र जैसे के तैसे है। शेष खंडहरो के रूप मे अतीत की खंडित गाथाये गा रहे हैं। कुछ खंडित मूर्तियाँ 'अमरावती' और 'साँची' की मूर्ति कला से मिलती जुलती होने के कारण समय की परिचिति कराती हैं। अनुमान होता है कि यह कला ईसा की प्रथम शताब्दि की है।

'अजन्ता' के सभी चित्र 'बुद्ध' के इतिहास से सम्बन्धित हैं। रेखाओ द्वारा भावो की व्यंजना कला पारंगत विशेषज्ञो की विशेषता दर्शाती है। 'बुद्ध' के गृह त्याग का दृश्य अलौकिक है। इस प्रकार अजन्ता की गुफाओ में अनेको कथाये चित्रबद्ध है। उस काल के चित्रो से अतीत की भावनाओं का पता चलता है। ये चित्र उस काल की कहानियाँ हैं। बुद्ध के जीवन की घटनाओ को लेकर अधिकांश भाव चित्रो की निर्मिति हुई है। चित्रों से उस काल की कला का सौन्दर्य उपस्थित होता है, विचारो का रूप मिलता है। कला मे जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है। इसके अतिरिक्त ढलते हुए युग में बौद्ध और जैन पुस्तको मे भी अस्वाभाविक अलंकारिता से भरे हुए फीके चित्र मिलते हैं। पर महत्त्वपूर्ण 'अजन्ता' के भित्ति चित्र ही हैं।

बौद्ध काल प्राय. सभी क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण रहा है। पुरातत्व विभाग द्वारा जो अनुसंधान हुए है वे अतीत की प्रत्यक्ष तस्वीरें है। प्रगति के नये युग ने अतीत को बहुत कुछ प्रकट किया है। धरा की धूलि में न जाने कितना इतिहास मिला पडा है। क्या पूरी कहानी प्रत्यक्ष की जा सकती है? बस यही कह सकते हैं कि न जाने कितने खंडहरो पर हमारे महल बने हुए है।

धरा की गोद से जो अतीत की स्मृतियाँ प्रकट हुई हैं क्या वे ललित कलाओ की कृतियाँ नही कही जा सकती? 'हडप्पा' तथा 'मोहनजोदडो' 'तक्षशिला' 'राजगृह' 'कुशी नगर' 'वैशाली' 'पाटलिपुत्र' 'सारनाथ' 'नालिन्दा' और 'साँची' आदि आज भी मध्यकालीन कलाओ के प्रतीक है। 'साँची' मे मुख्य स्तम्भ के दक्षिण तोरण के पास गिरे पडे एक स्तम्भ पर ऊँचे दर्जे

की शिल्प कला है। सांची के तोरणों की चित्र कला ऊँचे ढंग की है। जो आभूषण मूर्तियाँ एवं सितार वीणा आदि उपर्युक्त स्थानों से मिली हैं उनसे उस काल का कला लालित्य सिद्ध होता है। मठ मन्दिर स्तम्भ तोरण प्याले आदि अनेक वस्तुएं इन स्थानों से प्राप्त हुई हैं। उस समय के महलों की स्मृति स्वरूप जो खंडहर खुदाइयों से मिले हैं वे वस्तुत: वास्तु कला के सुन्दरतम नमूने हैं। बुद्ध की अनेकों कलात्मक मूर्तियाँ मूर्तिकला का मूर्त्त आदर्श उपस्थित करती हैं। ताम्रपत्र की खड़ी हुई मूर्तियाँ, मथुरा की खड़ी हुई बुद्ध मूर्ति, धार्मिक मूर्ति एवं कृष्ण लीला आदि की अनेकों मूर्तियाँ मिलती हैं। भावात्मक मुद्रा में श्वेत मूर्तियाँ अमर सत्यों की साकार चेतना दर्शाती हुई बोलती सी कला का गौरव बखानती है। कितनी ही अभंगुर मूर्तियाँ आज भी अतीत की गोद में गर्वित हैं। अजायबघरों में धरे हुए तत्कालीन गाने बजाने के यंत्रों के आधार पर कहा जा सकता है कि निश्चित ही उस काल में संगीत कला प्रधान रही होगी। बौद्ध भिक्षुओं ने अवश्य ही गा गा कर धर्म का प्रसार किया होगा। और क्योंकि वह शिक्षा जागृति एवं विकास का काल था अतः संगीत और नृत्य कला मोहक होनी प्राकृतिक ही है। उस काल के चित्रों में कुछ चित्र ऐसे भी हैं जिनमें नाच और गानों की अभिव्यक्तियाँ हैं। भैरवी रागिनी कत्थक नृत्य होली गीत आदि भावनाओं के कितने ही चित्र मिलते हैं। ढोलक सितार तबले बाजे आदि लिये गाते हुए बहुत से चित्र उपलब्ध हुए हैं। निश्चित ही मध्यकाल की सीढ़ियों पर ललित कलाओं ने खूब क्रीडायें की हैं। और पुरातत्व विभाग द्वारा जो अनुसंधान हुए हैं वे मेरे कथन पर प्रमाण की छाप लगाते हैं। चीनी यात्रियों ने भी नालन्दा आदि स्थानों का उल्लेख किया है। नालन्दा का शिल्प अत्युत्तम कहा गया है। जनरल 'कनिंगहम' की राय में यहाँ की शिल्प भारत की समस्त शिल्पों में सुन्दर है। नालन्दा विश्वविद्यालय में सभी ललित कलाओं के आदर्श मिलते हैं। इस विद्यालय में चित्रकारी, शिल्प कला, संगीत, वेद, दर्शन, काव्य आदि सभी प्रकार की शिक्षायें दी जाती थीं। विदेशों के विद्यार्थी यहाँ के छात्रावासों में वर्षों रह कर शिक्षा प्राप्त करते थे।

काव्य कला के प्रतीक तो अमर कवि कालिदास, भवभूति और बाण

अतीत की नयी भावनाये है । 'कालिदास' के रघुवंश, शकुन्तला, मेघदूत तथा 'भवभूति' के उत्तर रामचरित एवं 'बाण' के हर्ष चरित की रसात्मकता अमृतमयी है। कला की ये कलम अमर है ।

मध्य काल की मधुरता मे झूमते हुए हम कुछ तन्द्रानिमग्न हो गये। खुमार उतरने पर आधुनिक काल की तूलिकाये चली। रक्त के छींटो मे छिटकती हुई लेखनियो ने नये युग की झाँकियाँ देखी। इस युग को हम दिल्ली की लूट के बाद मुस्लिम काल से देख सकते हैं। राजपूतो के घमण्डी एवं फूट भरे बल पर छल कपट और साम्प्रदायिकता की मुस्लिम नीति का प्रभुत्व हुआ। भारतीय ललित कलाओ पर इस्लामी रोगन किया गया। फलतः वास्तु कला के दिव्य दुर्गों और मन्दिरो ने हरमो और मस्जिदो के रूप लिये । 'जामा मस्जिद' 'मोती मस्जिद' आदि अनेको मस्जिदे बन गई। मकबरो की शक्ले दमक उठी । चौहानो के किलो ने 'कुतुब की लाट' आदि का रूप लिया। पाण्डवो के पुराने किले पर अरबी की आयतो की नयी शिल्प कला चित्रित हुई। काव्य कला भी हिन्दू और मुस्लिम भावनाओ से प्रेरित हुई। वास्तव में तो कलाकारो के हृदय कैमरो के सदृश हैं। समय के पर्दे पर जैसी आकृति होती है वैसी ही उनकी कलम से खिंच जाती है।

लेकिन ललित कलाओ के लिये हम मुस्लिम काल को लालिमामय देखते हैं, और मुस्लिम काल मे भी विशेषत. मुगल काल को। मुगल साम्राज्य का प्रथम बादशाह 'बाबर' केवल कला प्रेमी ही नहीं था अपितु उच्च कोटि का साहित्यिक तथा चित्रकला पारखी भी था। पारस के अमर चित्रकार "विहज़ाद" के चित्रों की उसने सुन्दर समालोचना की है। यह कला प्रेम वंशगत बन गया तथा पीढ़ियो तक चलता रहा। वास्तु कला की अलौकिक प्रेममयी भावभरी तस्वीर सी कृतियाँ हमे मुगल काल मे मिलती है। वास्तु कला का ताज 'ताजमहल' इसी काल की कला का स्वरूप है। धन्य है 'शाहजहाँ' के प्रेम का यह साकार चित्र और धन्य है इस का रचयिता । आगरा का दुर्ग, दिल्ली का लालकिला आदि अनेकों अद्भुत निर्मितियाँ इस युग की कहानियाँ हैं । मुगल काल की कितनी ही इमारते अद्वितीय हैं । मुगल बादशाहों को वास्तु कला से बडा प्रेम रहा था। वे सुन्दर सुन्दर इमारते बनवाने के शौकीन थे।

मुगलों के काल में संगीत कला भी खूब रही। 'तानसेन' तथा 'बैजू बावरा' जैसे गायक इसी युग मे हुए, जो सुर ताल तथा लय से जड़ों में भी जीवन भर देते थे। दीपक राग और मेघराग इन्ही के कण्ठों से सुने। उस समय उत्सव आदि मे संगीत की अद्भुत बहार रहती थी। दर्बारों में तरह तरह के नृत्य तथा संगीतो की छप्पन छुरियाँ झूमतीं थीं। मुगल काल के जो चित्र मिलते है उन मे बहुत से गीतो एवं नृत्यो की अभिव्यक्ति करते हैं।

मुगलो के काल में भी सम्राट् 'अकबर' का काल ललित कलाओं का उज्ज्वल और अद्भुत सौन्दर्य रहा है। इस समय सभी कलाओ के पारंगत विश्व के सभी हिस्सो मे हुए। 'शेक्सपियर', 'एलिज़ाबेथ' आदि इसी काल के कलाकार हैं।

चित्र कला की तो इस युग में स्वर्णिम झाँकी मिलती है। और यह झाँकी विशेषतः सम्राट् अकबर के दर्बार मे दिखाई देती है, एवं इसी काल मे फली फूली और फैली। कलाओ का यह विकास शाहजहाँ के शासन काल तक होता रहा।

"आइने अकबरी" से पता चलता है कि अकबर के दर्बार में भारतीय और ईरानी दोनो शैली के चित्रकार थे। 'जसवन्त','बसावन' जैसे प्रतिभा सम्पन्न चित्रकारों का उल्लेख 'आइने अकबरी' में है। ईरानी और भारतीय शैली मिल कर एक नयी चित्रशैली निकली जिसका नाम 'मुगल-शैली' है।

मुगल शैली के चित्रो का बड़ा भाग व्यक्ति-चित्रो का है। अनेकों चित्रों के विषय आखेट, युद्ध, ऐतिहासिक घटनाओ, पौराणिक आख्यायिकाओ, दर्बारों, पशु-पक्षियो, फल फूलो आदि के चित्रण भी हैं। किसी किसी चित्र में धार्मिक भावना भी है। विषय की दृष्टि से मुगल कालीन चित्रकला निम्न भागों मे विभक्त की जा सकती है:— १-अमीर हमजा, शाहनामा आदि भारतीय कथाओ के चित्र। २- रामायण महाभारत आदि पौराणिक आख्यायिकाओं के चित्र। ३- ऐतिहासिक घटनाओ के चित्र। ४- नित्य के दर्बारी जीवन के चित्र। ५- शिकार और युद्धादि के चित्र। ६- प्रकृति और पशु पक्षी आदि के चित्र। ७- व्यक्ति चित्र। ८- आशिकाना चित्र।

इन चित्रो की अभिव्यक्ति सुन्दर एवं स्वाभाविक होती थी। प्रकृति के नाना रूपो का चित्रण भी चमत्कारक शैली मे हुआ है। शाहजहां के समय की एक विशेष शैली "दिल्ली कलम" पर्याप्त प्रसिद्ध है। शैली की दृष्टि से मुगल शैली के चित्र चार कक्षाओ में बाँटते हैं, — १–ईरानी कलम के चित्र। २– अकबर कालीन शैली के चित्र। ३– जहाँगीर काल की गम्भीर शैली के चित्र। ४–तथा शाहजहां के समय की सुन्दर और ढलती हुई शैली के चित्र। ईरानी शैली के चित्र अलंकार प्रधान हैं। प्रकृति एवं व्यक्ति आदि के चित्र भी अलंकारिक ही होते थे। मुगल शैली के चित्र यथार्थ एवं अभिव्यक्ति प्रधान रहे। जहाँगीर काल में संकुचित भावनाओं के हिन्दू भावनाओ से पृथक हिन्दूओं द्वारा सुन्दर चित्र रचे गये। इन तूलिकाओ से प्राकृतिक दृश्यों का भावपूर्ण और सूक्ष्म चित्रण हुआ है।

चित्रकला के उस स्वर्णिम सौन्दर्य में प्रायः सभी ललित कलाओं के दर्शन होते हैं। किसी चित्र में कल्पना साकार हो कर सितार पर गा रही है। किसी मे वास्तु कला के सुन्दर सुन्दर स्वरूप हैं। किसी किसी चित्र मे कोई मूर्ति पूजा में मग्न है। उस काल के कवियों के चित्र भी यत्र तत्र मिलते हैं। ये चित्र मुगल काल की तूलिकाओं के ही हैं। चित्रकला की इतनी सुन्दर तूलिकाओं को देखते हुए कौन मुगल काल की चित्रकला की प्रशंसा नहीं करेगा? कला की यह कलम वास्तव में कमाल की थी।

मूर्तिकला की भव्यता भी हम इस युग में देखते हैं, पर मुसलमानों की तलवार के नीचे। इस्लाम के दीवाने बहुत से शासकों ने साम्प्रदायिकता की संकुचित मनोवृत्ति में बहुत कुछ खोया है। लेकिन कलाओं का अस्तित्व तो कभी लोप हो ही नहीं सकता। यह सृष्टि ही ललित कलाओ की अभिव्यक्ति है। अतः मुगल काल या राजपूती काल में हम मूर्तिकला की कृतियाँ देखते हैं। महाराणा कुम्भा द्वारा गुजरात विजय के याद बनवाया हुआ कीर्ति स्तम्भ जिसमें देवी, देवता, नक्षत्र, मास और ऋतुओ तक की मूर्तियाँ हैं, राजपूती कला प्रेम का उज्ज्वल आदर्श प्रत्यक्ष करता है। दक्षिण भारत में आज भी उस काल की मूर्तियाँ हैं। जीवन की चेतना से युक्त "नटराज" की प्रतिमा मूर्तिकला की सजीव अभिव्यक्ति

है। इस मूर्ति मे भगवान का नृत्यानन्दमय विराट स्वरूप प्रतिबिम्बित है। नटराज की जो मूर्तियाँ प्राप्त हैं वे अधिकांश ताँबे की है। इन मूर्तियो के सब से अच्छे उदाहरण "तंजोर" के बृहदेश्वर मन्दिर में हैं। इस के अतिरिक्त धातुओ की और भी अनेको कला युक्त मूर्तियाँ भिन्न भिन्न स्थानो मे मिली है। प्राचीन खँडहरो पर अभंगुर प्रतिमाये आज भी मूर्तिकला के सौन्दर्य पर दर्शनीय हैं।

मूर्तिकला के मन्दिर मे फूल चढा अब हम सौन्दर्य भावनाओ के भव्य आनन्द मे आते है। यह आनन्द है काव्य का अमृत वर्षण। ललित कलाओ मे काव्य कला की अमरता रसात्मक है। मुस्लिम काल से हम भारत मे हिन्दी काव्य का आकर्षित स्वर सुनते है। अपभ्रंश, अवधी और व्रजभाषा मे काव्य की अलौकिक बाँसुरियाँ बजी। इतिहास की गति मे, कल्पना के पंखो पर, यथार्थ की सत्य गति भाषा रंजित भावों की भव्यता एवं अमरता लिये खेलती और खिलाती हुई संगीतमय है। गुण रस अलंकार आदि शास्त्रीय सत्यो तथा कला की सूक्ष्मता ने अनुभूतियो की अमृतमयी अभिव्यक्तियाँ की। रीति और कला का यह सामंजस्य काल रहा। एवं अमर महाकवियो की वाणी भी इसी समय सुनाई दी। वस्तुतः ललित कलाओ के लिये यह युग चत्मकारपूर्ण रहा। हिन्दी साहित्य के इतिहास के अनुसार काव्य के तीन तरु तथा उनकी अनेको शाखायें इसी केन्द्र मे फूली फली। महाकवि चन्द्र, तुलसी, सूर, केसव, बिहारी, भूषण, मतिराम देव, पद्माकर, कबीर, जायसी, रहीम, कुतबन, मंझन, खुसरू आदि के चरणो ने इसी काल को चेतना दी। इन कलाकारो के कारण ही उस काल के सम्राटो के नाम भी वाणी पर आते है। क्रान्तिकारी कवि कबीर की सत्यता इसी काल की कला है। महात्मा 'तुलसी दास' की सर्वाङ्गीणता इसी युग मे प्रकट हुई, जिसने जन की सांस्कृतिक भाषा मे सत्य का अमृत भरा, जिस अमृत को पीने वाला सत्य स्वरूप होजाता है। सूर की सरसता का अमृत भी इसी संगम पर बरसा। बिहारी ने गागर में सागर इसी भूमि पर लहराया। मतिराम का शुद्ध श्रृंगार इसी समय जवानी पर था। यदि यह कहा जाये कि यह काल रसो की घूमती हुई प्याऊ सा, सावन भादो की वर्षा सा एवं कुसुमाकर की सज्जा सा था

तो कलाओं का कुछ आभास अनुभूत हो सकता है।

प्रकृत मे अप्रकृत के सौन्दर्य की सुकुमारता ही नया शृंगार करती है। पुराना नया होता रहता है और नया पुराना। समय के घूंघट में कभी सौन्दर्य छिपता है और कभी दमक कर बिजली गिराता है। कभी रूप और जवानी थिरकती फिरती है तथा कभी धूलि की गहराई मे खो जाती है। कभी तूती बोलती है, और कभी बुरे दिन आते है।

अत औरंगजेब के शासन काल मे कब्रिस्तान की राह आगई। घोर अत्याचारों मे कलाये भी काल कोठरियो मे बन्द कर दी गई। मुसलमानों के बाद इस देश पर अंग्रेजों का झण्डा लहराया। और जब कोई जाति किसी देश पर अपना झण्डा लहराती है तो वहाँ अपनी हर बात जमाना चाहती है। वह वहाँ अपनी गति विधि चलाने का पूर्ण प्रयास करती है।

परिणाम स्वरूप भारत की हर बात पर विदेशी छाप पडने लगी। यदि भारत धर्म प्रधान देश न होता तो सम्भव था कि यहाँ दमन काल में हम ईसाई और मुसलमान बन जाते। लेकिन चाहे हम मुसलमान और ईसाई नही हुए पर हमारी कलम मे विदेशी स्याही अवश्य भरी गई।

इस काल की प्रथम पगडण्डी पर तो कलाओं की कलियाँ ही रहीं, फूल नही खिलने पाये। पर जैसे जैसे प्रगति के पर फैले वैसे ही वैसे कलाओं क फूल भी खूब खिले। विज्ञान के विकास के साथ ही मानव का क्षेत्र भी अन्तर्राष्ट्रीय हुआ। फलत ललित कलाओं के फूलो मे भी अन्तर्राष्ट्रीयता आई। कुछ फूलो मे विलायती फूलो की चमकीली सुन्दरता मचली तथा कुछ फूल सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के काननो मे क्रीडा करते रहे। कुछ तडप लेकर कौंधे तथा कुछ मेघ बन कर धरती मे छिप गये। कुछ बहिर्मुख हो कर मँडराते रहे एवं कुछ अन्तर्मुख हो कर दार्शनिक पृष्ठो के चित्र बने।

इस काल की असीमित पगडण्डी पर कलाओं के त्रिगुणात्मक दर्शन होते है। कलाओं के प्रत्यक्ष रूपों के साथ ही साथ हम इस दशा मे लक्षण और सिद्धान्तो के पृष्ठ भी असंख्य देखते है। ऐतिहासिक अनुसंधान भी बुद्धिवाद की बडाई करता हुआ कलाओं की कहानियाँ कहता है। वास्तव मे

विकास का यह युग हृदय और बुद्धि के संतुलन का युग नहीं अपितु बुद्धि की दुन्दुभी का युग प्रतीत होता है। अत. यह सम्भव हो सकता है कि सभ्यता के विकास में कलाओं को घूँघट काढ़ना पड़े। किन्तु कुछ भी हो कवियों की कलम, चित्रकारों की तूलिका, गायकों के स्वर, शिल्पकारो की करामात, एवं वास्तु कला के विशेषज्ञो के हाथ चूमने को पत्थर का भी जी चाहता है।

चीन की दीवार, इंगलैंड का पुल, पैरिस की रचना, आदि सप्ताश्चर्य इमारतें किसका मन नहीं मोहतीं। देश देश के ऊँचे ऊँचे दुर्ग, भवन, तथा महल देख कर कौन पाषाण वाह! वाह! नहीं करेगा! बड़े बड़े दर्शनीय मन्दिर देखकर वास्तु कला की अद्‍भुत कुशलता पर आश्चर्य होता है। बम्बई, करॉची, कलकत्ते, दिल्ली आदि की बिल्डिगें कई कई मंजिली और बहुत आकर्षक हैं।

लेकिन विज्ञान के इस चलते फिरते काल में हम वास्तु कला के ताजमहल, मोहनजोदडो, सारनाथ, इन्द्रप्रस्थ, प्राचीन दुर्ग, चित्तौड के क़िले जैसे ऐतिहासिक आदर्श नहीं पाते। हॉ, रहन सहन की इमारतें अवश्य सुविधाजनक बनी हैं। पर दिल्ली के आधुनिक राजभवन प्राचीन राजभवनो की तुलना में नहीं ठहरते। हमें अपनी प्रगति को पिछले सौ दो सौ वर्ष की अवनति से नहीं नापना चाहिये। मुझे तो यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता कि अर्वाचीन प्राचीन से बहुत पीछे है। प्रत्यक्ष है कि प्राचीन के स्थायित्व को करोड़ों वर्ष की हवायें भी नहीं उठा सकीं। वह धरा की गोद मे नयी प्रगति का अथाह केन्द्र एवं मूलाधार अभीष्ट सा स्थिर है। क्या आज के नये युग में कोई इन्द्रप्रस्थ जैसी रचना कर सकेगा? क्या भविष्य के रंगमंच पर आज की वास्तु कला की कोई अद्‍भुत स्मृति शेष रहेगी? बडे बडे शहरों एवं नगरो मे जो ऊँची ऊँची बिल्डिगें हम देखते हैं क्या वे भूकम्पों में भूपर खड़ी रह सकेंगी? अधिक दूर की बात न कह कर मैं अपने नगर के लगभग सौ वर्ष पूर्व के एक भवन की बात आपको बताता हूँ। यह मकान स्वराज्य पथ पर है। इस मकान की यह विशेषता है कि चूहे आज तक उसमें कोई बिल नहीं बना सके और भवन चूने से चिना हुआ है।

मुझे तो आज की वास्तु कला मे हवाई बातें अधिक दीखती हैं। ज़मीन के अन्दर सड़कें बनाई जा सकती हैं, नगर बसाने के प्रयत्न किये जा सकते हैं पर किसी अद्भुत ऐतिहासिक निर्माण की तो अभी कल्पना भी दिखाई नहीं देती। ईश्वर करे कि भविष्य अतीत पर विजयी हो।

मूर्तिकला की कोमलता इस काल में अधिक तो है पर पूर्व सी प्रकाशमयी नहीं। जयपुर, बम्बई आदि की प्रस्तर मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर बनती हैं लेकिन बौद्ध कालीन ताँबे तथा पीतल की स्वर्ण मूर्तियो जैसी भव्यता इनमें नहीं। मन्दिरो की मनोहर मूर्तियो में जो आकर्षण है वह 'इण्डियागेट' पर लगे अंग्रेजों के स्टैचुओ में नहीं।

यह माना कि मूर्तिकला की बारीकी आज भी बहुत पैनी है। मूर्तियों की चमक दमक से आँखे चौंधिया जाती हैं। आज का मूर्तिकार हाजिर जवाब भी है। बम्बई मे रवि बाबू आदि बड़े बडे नेताओं के सामने एक मूर्तिकार ने एक घण्टे के अन्दर एक चकोर पत्थर को सम्राट् जार्ज पंचम की आकृति मे बदल दिया था। एवं गाँधी जी आदि की अनुपम मूर्तियां आज भी बनी हैं। करॉची मे गाँधी जी की बड़ी प्यारी मूर्ति है। और भारत मे कुम्भकार जो मिट्टी के अनमोल खिलौने बनाते हैं वे भी तो मूर्तिकला के ही खिलौने हैं। साथ ही संसार में भारतवर्ष ही प्रधान मूर्ति-उपासक देश है। इसका सनातन धर्म तो मानो भगवान की मूतिकला पर ही आधारित है। अत: इस देश की मूर्तिकला के हम ही कायल नही दूसरे भी दाद देते हैं। इस देश की मूर्तिकला विदेशों मे भी आदृत है। जयपुर और बम्बई से दूर दूर मूर्तियां जाती हैं। आशा और विकास के बढ़ते हुए कदम देखकर मूर्तिकला की नयी कल्पना और स्थिरता आती प्रतीत होती है। या यह कहो कि प्राचीन नयी कलम से प्रत्यक्ष होना चाहता है।

आज की चित्रकला का चार्ट तो पोथा बनना चाहता है। दो चार शब्दो मे चित्रकला की इतिश्री करना कलम की स्याही के लिये सम्भव नही। आज इने गिने चित्रकार ही नहीं अपितु चित्रकला के बड़े बडे शिक्षण केन्द्र भी हैं। विशेष शिक्षण केन्द्र में ही सीमा नहीं अपितु प्रत्येक पाठशाला मे चित्रकारी पढाई जाती है। साथ ही धुरन्धर चित्रकारो के आज हमें दर्शन होते है। अद्भुत आकर्षक एवं बोलते हुए चित्र आज हम देखत

हैं। प्रगति क इस अन्तर्राष्ट्रीय युग में चारों ओर की चित्रकलायें हमारे सामने है। और अम्बर के कल्पनातीत चित्रो की तरह अनगिनत तारो से कितनी ही तरह के चित्र आज दिखाई देते हैं। 'रेखाचित्र' 'छायाचित्र' 'भावचित्र' इकरंगे चित्र, तिरंगे चित्र, पंच रंगे चित्र आदि अनेकों प्रकार की तस्वीरें आज तूलिका की तारीफ करती हैं। व्यंग्य चित्रो का कटाक्ष तो आज पत्थर को भी घायल कर देता है। अखबारो और पुस्तको मे तरह तरह की चित्रकारी नये नये श्रृंगार कर दर्शकों से वाह! वाह! करा ही लेती है। बड़े बड़े चित्र प्रकाशक भी आज संसार मे है। प्रत्येक देश के चित्र आज बाज़ारो मे बिकते है। चीन, जापान, ब्रिटेन, रूस, अमेरिका, जर्मनी भारत आदि के चित्र प्रायः प्रत्येक देश मे उपलब्ध हैं। इन चित्रों के पूरे प्रकार देने मे पूरे पूरे कई पोथे लिखने पड़ेगे। तेल, पानी, फोटो, चाक़ पेंसिल प्रभृति कई शैलियों से चित्र रचे जाते है।

सम्प्रति पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, सज्जा आदि के लिये निर्मित चित्रो मे अद्भुत आकर्षण है। कपड़े, हाथों आदि पर बने हुए चित्रों का चलन भी खूब है। यवनिकाओं और हाथों इत्यादि पर तस्वीरें बनवाने की प्रथा तो सम्भवतः बहुत प्राचीन है। और आज तो प्राचीन एवं नयी शैली तथा स्थानान्तरीय ढंग के चित्र चमत्कृत हैं। वास्तव मे आज की तूलिका चूमने को जी चाहता है। अतीत की भूमि तथा नये पृष्ठों पर सम्प्रति चित्रकला निश्चित ही नयनो को हटने नही देती।

चाहे और कलाओं की कुछ भी कहानियाँ हैं पर इस पगडण्डी पर काव्य कला की कलम भावपक्ष एवं कला पक्ष की लाक्षणिक अभिव्यक्तियाँ बनकर आकर्षित करती है। आज का अन्तर्मुखी काव्य कल्पना की उड़ान मे इतना ऊँचा पहुँचा है कि अनुभूति तो होती है पर अभिव्यक्ति उलझ जाती है। नये युग की कविता मे जीवन झाँकी, कला, कल्पना, गम्भीरता, स्वाभाविकता, गति प्रगति उत्तरोत्तर नयी एवं आत्मरूप है। अनुभूति, प्रेरणा शैली संयत तथा स्वाभाविक हैं। कविता शब्दाडम्बर नही बनती। आज की कलम घायल करती है। भावनायें चुभ कर हृदय को छू जाती हैं। नये काव्य मे बुद्धि और हृदय का संतुलन है। श्वासो के चित्र है। आँसुओं की कहानियाँ हैं। राष्ट्र के स्पन्दन हैं। प्रकृति

के पुष्प हैं। जीवन की हुंकारें हैं। भाषा की अनुरूपता एवं अलंकारों की प्राकृतिक सज्जायें हैं। रेशमी भाषा में कोमल भावनाओं की तस्वीर तल्लीनता दर्शाती है और हृदय पर स्वभाव की अमर छाप छोड़ती है।

आज उपासक और उपास्य भाव से आँखों का जो अर्घ्य काव्य धारा बनकर बहता है वह शाश्वत तो है, पर आराधना के ये आँसू देवताओं के चरणों पर चढ़े हुए नहीं होते, अपितु प्रेयसी के स्पन्दनों पर बहे हुए होते हैं। वर्तमान काव्य मे भक्तिकाल जैसी तल्लीनता नहीं मिलती। आज की अन्तश्चेतना प्रेयसीपूर्ण है। प्राणों की छटपटाहट प्रिया की छटाओं पर है, परमात्मा की अलौकिकता पर नहीं। और ना ही रीतिकाल की लक्षण प्रणालियों पर ही कलम ठहरती है। बल्कि प्राचीन भूमि पर नयी कलम के नये प्रयोगों से नवीनता निखरती है और जिस मे साहित्य मे बहुरूपता आई है। गद्य और पद्य मे सब प्रकार के साहित्य सृजन की ओर आज कलम का झुकाव है।

'कामायनी' के कलाकार की कलम को यह कलम 'हिन्दी साहित्य की चन्द्रमणि' पुरस्कार से विभूषित करती है। या यह कहो कि 'प्रसाद' की पूजा पर शब्दों के फूल चढ़ाती है। आधुनिक काल की प्रतीक यह कलम प्राचीन को नया दर्शाती है तथा नये को उत्तरोत्तर नया करती है। महाकवि 'जयशंकर प्रसाद' की लेखनी अद्भुत है। उनके पात्रों मे पूर्णता है। उनकी नारी ज्ञान लोक, इच्छा लोक, और कर्म लोक की भूमि है। उनकी भावुकता अतल है। उनकी भावना भवविभूषिता सुलक्षन है। उनकी भव्य भाषा भाषा-कानन की सर्वाधिक सुगन्धित मंजरी है। 'प्रसाद' के अतिरिक्त और भी प्रतिनिधि साहित्यिकों की लेखनियो ने बहुत कुछ लिखा है। वह नया है, आकर्षक है, प्रगतिशील है। नये साहित्य में तरह तरह की धारायें हैं। गद्य की यह गरिमा और काव्य की कोमलता भविष्य की चिकनी पगडण्डियाँ प्रतीत होती हैं। मनोवैज्ञानिक एवं सैद्धान्तिक सीढियों पर चढ़ता हुआ साहित्य जीवन और जगत की तल्लीनता मे तादात्म्य है।

साहित्य–वीणा की झनकार संगीत के स्वरों में स्पन्दित होती है। कवि सम्मेलनों आदि मे कण्ठ स्वर लालित्य का रस बरसता है। और भी कोने कोने से संगीत की आवाज़ आती है। पर संगीत की वह प्रधानता आज

गीतकारो के कण्ठो तक ही है, जिससे बादल बरसने लगें और दीपक जल जायें। आज जो तान सुनते हैं उस मे बहुत सस्तापन है। सिनेमाओ के गतिहीन गीतो की भरमार ही अधिक है। यह माना कि सिनेमाओ के गीतो ने प्रत्येक को चवन्नी वाला गायक बना दिया है, पर संगीत कला की विशेषता का ध्यान नही रखा। और यह भी बात है कि अच्छे गीत सिनेमाओ के दिवाले भी निकाल देते है। जनता तो बहुत ही निम्न कोटि के गीतो मे रस लेने लगी है। लेकिन जनता की रुचि पर ही तो हमे नही चलना है। कलाकार जनता की रुचि को जिधर चाहे उधर ले जा सकता है। किन्तु हम देखते है कि रेडियो आदि सरकारी विभागों से भी कला की अवहेलना की जाती है। कुछ अच्छे अलापो को छोड कर सब मे धाँधले बाजी है। यदि वैज्ञानिक साधनो से संगीतमय वाणी मे काव्यामृत बरसाया जाये तो कलाओ का कितना विकास हो। क्या कलाकार और जनता जागृति की भूमि पर उत्सव रचना चाहते है ?

युगो की पगडण्डियो पर उत्थान और पतन आते रहे है। उत्थान और पतन प्रकृति का नियम है। न जाने कितने परिवर्त्तनो मे कितने नये पुराने और पुराने नये हो चुके है। परिवर्त्तन प्रकृति का क्रम मात्र है। पापो की पराकाष्ठा से पुण्य एवं पुण्यो की पराकाष्ठा से पाप–यही तो संसृति का चक्र है। नया वही है जो पुराना नही होता। ललित कलाओ को हम नयी की परिभाषा मे रख सकते हैं। ये घूँघटो मे छिप अवश्य जाती है पर नश्वर नही होती, नीरस नही होती। कलाकारो के स्नेह मे ये सुन्दरियाँ दर्शन देती हैं। युगो के महलो मे इनके रूपो की झनकारें सुनाई दी हैं। पर सम्प्रति सौन्दर्य संसृति की सुष्मा नहीं। हम बहुत संकीर्णता से सोच कर कुछ कह देते है। हमारी प्रगति अतीत से अधिक नही है। हम अपना विकास पतन के पिछडे हुए पिछले वर्षों से तोलते हैं। पतन के वर्षों से प्रगति के दिनो को नापना न्याय नीति नही। हम यदि सत्युग द्वापर और त्रेताओ के किसी युग को प्रत्यक्ष कर सके होते तो खूबी होती। कलाकारो की कलम अभी अतल मे है, और कला पारखियों की आँखे आँसुओ में। अमृत मन्थन की आवश्यकता है।

नया युग नयी चेतना लेकर उठे।

छायावाद की भूमि

पत्तों की पायलें बजाती हुई प्रकृति रूप और शृंगार में अलबेली है। उसकी अठखेलियों में आँखें उलझाये कोई हँसता है और कोई रोता हुआ गा रहा है। अन्तरिक्ष में मेघ माला की मनुहारें न जाने कितनी कल्पनाएं करती हैं पर पूरी नहीं होतीं, हार कर बरस पड़ती हैं, कौंध कर छिप जाती हैं। पीड़ा के वे आँसू ही तो हरियाली प्रकृति के स्वरूप है, या कहो कि यही शून्य के हृदय की छाया है।

पल्लवों पर कितनी ही कहानियाँ लिखी हुई हैं। विद्युत की कौंध और इन्द्र धनुष की रंगीनी नयनों की हार जीत ही तो है। चांद तारों में नीलाम्बरा मुरली लिये रुपहली चांदनी पर चुपके चुपके चलती और ढलती है, एवं साथ ही साथ जलता और ढलता रहता है स्नेह भरा दीपक, जिसकी ज्योति में दाह होता है।

सुन्दर शून्य की उस नीरव छाया में तरु के तने से कमर लगाये कलाकार कुछ लिखता हुआ छाया को देखने लगा।

छाया के उस निरीह वातावरण में तरु के नीचे एक और छाया थी। और उस छाया में भी कलाकार की छाया छाई हुई थी। कलाकार के ऊपर पत्ते थे, पत्तों के ऊपर चांदनी, चाँदनी के ऊपर चांद तारे, चांद तारों के ऊपर नीलाकाश, और उससे भी ऊपर शून्य, तथा शून्य से भी परे न जाने कितना विस्तार था।

कलाकार की धड़कन मचली। उसने प्रेरणा की प्रतिमा एक सुन्दरी से हृदय जोड़ा। आँखें मिलते ही वह उसे पाने के लिये छटपटाने लगा। प्रलय हुंकारी, पत्थर बरसे, पर उसकी दृष्टि निर्निमेष ही रही।

व्यवधान भी पथ पर अडे हुए थे और कलाकार भी अडिग था। कलाकार ने तट पर से सागर की लहरों को गिनना छोडा। वह मृत्यु को ललकार सिन्धु की गर्जती हुई लहरो मे कूद पडा। कूदते समय उसके हृदय-वीचियो की छाया सागर की लहरों पर थी। उसकी अन्तराग्नि वडवानल पर छा गई। उसका जीवन जलधि के जीवन पर लहराने लगा। उसकी छाया के कोष अथाह के रत्नो को खोजने लगे। न जाने कितने दुःखो के सिन्धु पार किये पर प्यार के पल न पा सका। तब वह विरह की आग मे आँखो के आँसू बरसाता हुआ गा उठा। उसकी गति समस्त कल्पनाओं की अनुभूतियो मे चमत्कृत हुई। दृश्य लोक की प्रत्येक कम्पन के साथ उसका हृदय जा मिला। उसका प्रेम प्रकृति के दृश्यों मे नाचने लगा। अपने प्रेम का अमूल्य कोष लिये हुए वह सम्पूर्ण जगत खोजने को आकुल हुआ। उसके हृदय में समर्पण की चाह मचली। अधरो पर गीत और आँखो के आगे रीझ खीज के स्पन्दन आये। व्याकुलता मे भूला सा वह शेष प्रकृति मे परिभ्रमण करने लगा।

बस जब कवि खोया खोया सा अपनी आन्तरिक छाया प्रकृति के स्पन्दनों मे अंकित करता है तभी उसकी कविता छायावादी कहलाती है। जब उसकी भावनाये दृश्य लोक की रमणीयता मे झलकती है तभी वे छायावादी कहलाने लगती है। जब वह शेष जगत मे अपनी हृदयगत अनुभूतियो को खोजता हुआ चित्र खीचता है तभी कविता का छायावादी रूप हमारे सामने आता है। जब अदृश्य भावुकता की छाया स्वर के सहारे ईश्वर की सत्ता मे झलकती है तभी छायावादी धारा झिलमिलाती हुई निनादित होती है। जब परमात्मा की सत्ता आत्मा की सत्ता मे तादात्म्य हो साकार दिखाई देती है तभी छाया की आकृति उदित होती है। भावुकता से पिंघल स्वर में घुलकर निकली हुई भावनाएं आत्मीयता खोजने मे खोई रहती है, उन अनुभूतियो की छाया शेष दृश्यलोक की कम्पनों मे स्पन्दित होती हैं, साहित्य मे यही छाया छायावादी रचना के नाम से कथित है।

स्थूल सृष्टि मे प्रत्येक वस्तु की छाया होती है। इसलिये हम इस मर्त्यलोक को छायालोक भी कह सकते हैं। यहा दीखने वाली कोई

वस्तु ऐसी नही जिसकी छाया न पडती हो। शरीर की छाया होती है। दीवार की छाया देखते है। पेड की छाया मे बैठते हैं। क्या इस छाया लोक मे कोई ऐसा कण है जो प्रतिबिम्बात्मक नही!

ठीक इसी प्रकार कवि के हृदय की छाया हर ओर पडती है। फूल पर वह छाया डालता है, पत्तो पर वह छाया छोडता है, बरसात मे उसकी छाया बोलती है, पतझड मे उसकी छाया छटपटाती है, बिजली में उसकी छाया कौंधती है, मेघो में उसकी छाया मचलती है, और उससे भी परे जहाँ जहाँ उसका हृदय जाता है वहाँ वहाँ छाया छाई रहती है। अर्थात् अनुभूतियो की प्रकृत्यात्मक अभिव्यंजना ही छायावादी रचना है।

यही वह रचना होती है जो सुन्दर की छाया प्रकृति के सौन्दर्य मे झलकाती है। यही वह यथार्थ सत्य है जो जड मे चेतना भरता है। यही वह अभिव्यक्ति है जो कल्पना के पंखो पर उडती हुई छायात्मक दर्शन देती है। यही वह प्राणों की छाया है जो दृश्य लोक पर बिखर रूप बनकर निखरती है।

कवि अनुभूतियों की जिस स्थिति में होता है हृदय की छाया का वही रुप लाक्षणिक सौन्दर्य मे झलकता है। रीझ खीज, आनन्द, उत्साह,वात्सल्य, करुणा आदि मानसिक वृत्तियो की छाया प्रकृति की किसी भी वस्तु पर अपना रूप ले लेती है। जैसे बसन्त ऋतु मे सरसो के खिले हुए फूलो को देखकर कोई कहे "आज प्रकृति मे फूल खिले है, किस पीडा से पीले!" तो मधु ऋतु के इस मनोहर मूर्त स्वरूप में भी हम कवि के हृदय की टीस देखने लगते हैं। हृदयगत भावो की यह छाया बसन्ती फलो मे पीडा की साकार तस्वीर सी दीखती है।

शेष जगत मे भाव जगत का यही हृदय काव्य मे छायावाद का स्वरूप है। मनोवृत्तियों की भिन्न भिन्न अवस्थाये प्रकृति के स्पन्दनो मे मुखरित होती हैं। संयोग की तरंगो मे उन्माद की छाया स्वर लहरी की तान संगीत के सुर मे भरती है। अर्थात् जब चलता चलता कवि अपनी उपासना के फल स्वरूप हृदय की चाह को पकड संयोग की वीणा बजाता है तो वह अपने प्रेम की अभिव्यक्ति प्रेयसी के सौन्दर्य की छाया लिये हुए शेष

संसार की कल्पना में करता है, तथा इन सौन्दर्य-चित्रों को कला एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ छायावादी कहने लगते हैं।

पर कवि की यह साधना छाया रूप होते हुए भी आत्मरूप है, क्योंकि यह छाया पार्थिव की नहीं सूक्ष्म की होती है। साकार उपासना की भक्ति भरी रचनायें भी इसी तत्व के अन्तर्गत आती हैं क्योंकि अनुभूति एवं भावनायें सतत होती हैं। नश्वर रूप पर मचलती हुई चाहे भी उस अनन्त के अन्दर व्याप्त छाया से ही प्रेम करती है। उस विराट की छाया ही तो आँखों के विषय सौन्दर्य मे छिपी हुई है।

इस प्रकार कवि के हृदय की छाया उस विराट की छाया में तादात्म्य कर लेती है और काव्य के स्वर मे गूंजता हुआ वही तादात्म्य छायावादी काव्य है। मेरी पहुंच के अनुसार तो यथार्थ की सीधी अभिव्यक्तियों को छोड कल्पना की उडान के साथ कवि का जो तादात्म्य प्रकृति से होता है वही छायावाद है।

प्रकृति मे प्रतिबिम्बित कल्पना प्रधान काव्य मुखरित सौन्दर्य है। यह अशरीरी शैली रागात्मक भावों की गहरी अभिव्यक्ति है। रहस्यवाद भी एक प्रकार से छायावाद का ही तादात्म्य भाव है। जब ससीम का हृदय असीम मे घुल मिल कर आनन्द का अनुभव करता है तभी अभिव्यक्ति रहस्य बन जाती है। समुद्र का जल और समुद्र की लहरे पृथक् कहे या आत्मरूप? यह आत्मैक्य अनुभूति और प्रेम-प्रेरणा ही रहस्यवाद है। नाम कुछ भी धर दो, पर काव्य वास्तव में हृदय की छाया ही है। चाहे कवि सगुण उपासक है चाहे निर्गुण, पर छायावादी अवश्य है। आज कल हम दार्शनिक रंग की अस्पष्ट अभिव्यक्ति को ही रहस्यवाद समझते हैं, पर "जयशंकर प्रसाद" का छायावाद क्या है? क्या वह रहस्यवाद नही है? "प्रसाद" की अनुभूति इतनी गहरी, गम्भीर और प्रेममयी है कि छाया अशरीरी हो जाती है। यही छायावाद रहस्यवाद की बोली बोलने लगता है। जीवात्मा की छाया परमात्मा मे लीन होती है तो रहस्यवाद प्रकट होता है और यदि हृदय की छाया विराट् की असीम छाया पर पडती है तो छायावाद छिटकने लगता है।

छायावाद में हृदय की स्पष्ट छाया शेष प्रकृति मे दिखाई देती

है। पर उस छाया मे नश्वरता नही होती, और ना ही वह मूक होती है। वह सदा रहती है और सदा बोलती है। वह स्वयं मे बहुत स्पष्ट है पर अस्पष्ट उलझन मे वह सुलझती नही, सुलझती तब है जब उसी अनुभूति मे अन्तर्मुखी चातक घुल जाये।

प्रेम कभी नश्वर नही होता, नश्वर तृप्ति होती है। वासना की तृप्ति एक पृथक् वस्तु है और प्रेम पृथक्। प्रेम में प्यास होती है और वासना मे भंगुर तृप्ति।

अत क्योंकि कवि प्रेम का पुजारी होता है उसकी तृप्ति नहीं होती। वह अपना हृदय उपास्य के श्रृंगारार्थ शेष सारे लोकों में लिये फिरता है। वह कण कण को खोजता है। जहां तक पहुंच वह अपने हृदय की स्पष्ट छाया डाल पाता है वहाँ तक उसकी रचना छायावादी रहती है। यहाँ तक की उसकी भावनाएं शाश्वत और स्पष्ट होती हैं। वह जो कुछ अनुभव करता है उसे कह पाता है पर उसके कहने मे एक अनश्वर छायावादी चित्र होता है।

प्रकृति के व्यापारों एवं व्यवहारों मे भावुक की अनुभूतियों की छाया रहती है। इस छाया को रस परिपूर्ण की अवस्था मे हम काव्य की आत्मा भी कह सकते हैं। पार्थिव शरीर के नष्ट होने पर भी जैसे आत्मा नष्ट नही होता ऐसे ही कवि की दीर्घ यात्रा होने पर भी उसके हृदय की छाया नाश को प्राप्त नही होती। कारण, कि उसके हृदय की छाया शेष सबके हृदयों की छाया के रूपक रूप मे प्रकृति के स्पन्दनो मे झलकती रहती है।

छायावाद मे कवि द्वैतवादी प्रेम की अमूल्य निधि लिये हुए अपने हृदय का तादात्म्य उस कलाकार की कम्पनो मे खोजता हुआ गाता है। प्रकृति की हर कम्पन के साथ उसका हृदय मिला रहता है। तथा प्रकृति और हृदय के सयोग मे जो ध्वनि बाँसुरी मे निकलती है वही तो छायावादी रचना है।

वैसे तो संसार का प्रत्येक प्राणी स्वभाव मे ही कवि है। हर एक के हृदय में भावनायें उठती हैं। प्रत्येक को अपने हृदय का प्रतिबिम्ब शेष जगत मे दीखता है। कवि न होने पर भी वियोगी को चाँदनी जलाती है। दुखी को सारा संसार दुखी दिखाई देता है, सुखी को रुदन के रंग मंच पर भी रंगीनियां

सूझती हैं। अर्थात् जैसी जिसकी मानसिक स्थिति होती है वैसी ही वह प्रकृति को देखता है। पर साधारण प्राणी में अभिव्यंजक शक्ति नही होती।

भावनाएं तो होती हैं पर प्रत्येक अपनी भावनाओ से दूसरे को गति नही दे सकता। उसकी अनुभूति अपने ही हृदय की परिधि मे रहती है। किन्तु कवि के हृदय की अनुभूति प्रत्येक के हृदय की छाया एवं आत्मैक्य रूप से झिलमिलाती है। वह विद्युत को, मेघो को, वर्षा को, ज्योत्स्ना को, पतझड को, बसन्त को, वीचियों को, एक अद्भुत उडान के साथ देखता है। प्रकृति को प्रत्येक कम्पन उसके हृदय मे हिलोर लेती है, अधरों पर फडकती है, आँखो मे नाचती है, और जिसमे भावुक की अनुभूति का स्वर गूंजता है, भावना का चित्र झिलमिलाता है, तथा इस सुरभित गूंज पर हम सब झूमते रहते हैं।

छायावाद किसी विशेष पक्ष की भूमि पर ही नहीं खिलता। प्रत्येक अनुभूति कलापक्ष और भावपक्ष से सौन्दर्य सम्पन्न होती है। प्रतीक योजना, अलंकारिक सज्जा, कल्पना की कुशलता, प्रकृति की चित्रकारी, उक्ति का चमत्कार आदि कलापक्ष के गुण हैं। व्यंजना के विस्तृत अर्थों मे ही उत्तमोत्तम काव्य का आनन्द है।

छायावाद मे भावना का शृंगार सभी संचारी उद्दीपनो से होता है जिसमे विभावानुभाव योजना स्वतः मुस्काती है। आश्रय के हृदय में बैठी आलम्बन–प्रतिमा भाव और कला पक्ष से उद्दीप्त हो अद्वितीय कल्पना–सुन्दरी के रूप मे दर्शन देती है। कवि का यथार्थ आदर्श और कल्पना बन कवि को प्रकृति में खो देता है। तथा कवि को स्वयम् मे छिपाये हुए प्रकृति ही छायावादी कविता है।

जब से प्रकृति है तभी से प्रकृति में कवि बोलता है। संसार का हर सुन्दर कवि प्रकृति में लीन है। एक दो उदाहरण देकर मैं शेष काव्य के साथ अन्याय नही करना चाहता। हाँ, इतना तो मैं मानता हूँ कि कविता की इस शैली को छायावाद का नाम देना नयी बात है और यह नामकरण संस्कार नयी शताब्दी का विनिमय उत्सव है।

साथ ही छायावाद का विषय शृंगारिक काव्य या प्रेम की प्यास ही

नही है। प्रत्येक रस मे छायावादी चित्रण हुआ है, हो रहा है, और होता रहेगा। यह कहा जा सकता है कि छायावाद का स्थायित्व कवि के जीवन की भूमि है जिसमें समस्त भावो का वास है। अनुकूल अवसर के अनुसार मानसिक स्थिति की छाया प्रकृति पर पडती है।

यह है छायावाद का वह स्वरूप जो अन्तश्चेतना बताती है। यह है वह पहेली जो तरह तरह से सुलझाई जा रही है। यह है वह स्पष्टता जो साहित्य में अस्पष्ट सी उलझन है। सीधे से और सरलता से कहना चाहो तो ऐसे कह दो कि जैसे छाता लगाने पर उसकी छाया हमारे ऊपर पडती है वैसे ही कवि के हृदय की छाया शेष जगत पर पडती है जिसे हम छायावाद कहते हैं।

कुसुमों के सुरभित कानन मे पेडों की छाया की मधुरता कितनी रसास्वादक होती है। छाया शब्द मे ही शान्ति है। भाव यह है कि आत्मा की छाया शान्ति मे प्रतिबिम्बित होने लगती है, और इस छाया में प्राणी प्रेम से विभोर रहता है।

कविता का प्रयोजन तो लोक रंजन की अपेक्षा हृदय रंजन ही अधिक है। कविता कवि के प्रेम–आँसुओं से सिंच हृदय से फूट कर निकलती है। मेरे अनुभव मे यही गंगा कविता के स्वरूप में आई है। इस प्रेम की छाया आत्मा और परमात्मा पर पडती है, या आत्मा की छाया परमात्मा पर, और परमात्मा की छाया आत्मा पर। अर्थात् जीवात्मा के हृदय का वह प्रकाशन जो अनन्त शान्ति से अपना छायात्मक सम्बन्ध जोडता है छायावाद ही कहलायेगा। प्रेम के इस पृथक् स्वरूप मे भी द्वैत भाव नहीं रहता। ईश्वर के सभी गुणों की छाया आत्मा पर पडने लगती है। प्रकृति और जीवात्मा का यही तादात्म्य भाव छायावाद है। हृदय के अनन्त प्रेम का आभास शान्त और सुन्दर प्रकृति मे होने लगता है। सीमित परिधि में असीमित की छाया पड़ती है। हृदयवासी की असीमित छाया जब कवि प्रकृति के अंगों में चित्रित करता है तो वह चित्रण छायावादी कहलाने लगता है।

छायावादी कविता स्वरूप के दर्शन कराती है, और तादात्म्य पथ

का निर्देष भी करती है। वह शान्त में लीन रहती है। छायावादी छाया रूप से दोनो लोको मे विहार करता है। वह नक्षत्र लोक से परे भी पहुँचता है, और गगन की रंग बिरंगी सुन्दरता मे भी झलकता है। वह अलौकिक प्रकृति मे घुला रहता है तथा लौकिक प्रकृति में विचरण करता है।

यह भी नहीं भूलना चाहिये कि छायावादी कविता बच्चो का खेल नहीं है, सस्ती भावुकता मे ताशो का घरगुल्ला नही जो हवा लगते ही बिखर जाये। छायावादी रचना वही कही जायेगी जिसमें गहरी गम्भीरता हो। चिड़ियो की ची ची सी चिल्लाहट छायावादी कविता नही। छायावाद मे रहस्यमयी स्मृति और प्रेम की अमूल्य निधि का होना ही सौन्दर्य है। छायावादी की तडप विद्युत की कौंध की तरह पल भर मे चमक कर छिपती नही। उसकी तडप की छाया छाई रहती है। उसमें अमिट स्थिरता की निस्पन्दित वर्तिका दीपित होती है। यह ज्योति किसी आवरण से ढकती नही। छायावाद का सौन्दर्य कभी बूढा नही होता। छायावाद का सत्य शिव छिपाये नही छिपता। उसकी छाया मे प्रकाश होता है।

माना कि परमात्मा की सत्ता सर्वोपरि है, पर आत्मा की सत्ता का अस्तित्व भी संसार मे है। अतः आत्मा का साक्षात्कार शेष जगत मे गम्भीरता से निनादित होता रहे यही कलात्मक काव्य की विशेषता है।

अनुभव, व्याख्या, एवं मीमांसा से मै तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि छायावाद एक सूक्ष्म शैली का नाम है। अनुभूति के कलात्मक चित्रो को ही छायावाद कहना चाहिये। काव्य की यह शैली आदि से ही पाई जाती है। सस्ती और स्पष्ट भावुकता से परे हृदय मिलाकर जो कल्पना कवि करता है वही छायावादी कविता हो जाती है। यह तो मै मानता हूँ कि छायावादी शैली बहुत बारीक है। काव्य का निखरा हुआ स्वरूप इसी शैली मे दीखता है। यही शैली काव्य की सुन्दरता भी है। पर मैं यह कदापि नही कह सकता कि यह

शैली पश्चिम से आई है। यह शैली तो कवि में स्वाभाविक है। वह कविता ही नहीं जिस पर शेष स्पन्दनों की छाया नहीं। वह कवि ही नहीं जो प्रकृति में घुल नहीं जाता।

कवि ही क्या प्रत्येक स्वभाव से ही छायावादी है। किन्तु क्योंकि कवि का हृदय तादात्म्य होकर प्रकृति में झलकता है इसी लिये वह सबके हृदयों का प्रतिबिम्ब है। छायावाद काव्य में कोई आज या कल की वस्तु नहीं। जब से काव्य है तभी से छाया, और जब से छाया है तभी से काव्य। कोई छाया का आनन्द लेता है, कोई छाया बनकर छाता है। यही छायावादी क्रम तो छायावादी साहित्य है।

भारतीय साहित्य की परम्परा सत्यम् शिवम् सुन्दरम् रही है। और यह भी सिद्ध है कि काव्य साहित्य भारतीय साहित्य की तुलना में कहीं का नहीं बैठता। आदि सृष्टि के अनुसार आदि काव्य का आविर्भाव भी यहीं से हुआ। यहाँ के काव्य की सुन्दरता एवं सूक्ष्मता की व्यापकता बहुत कोमल है। अनुभूतियों की गहराई और उसका शेष जगत से तादात्म्य रूप कल्पना की तरह ऊंचा है। उसे देखने के लिये दृष्टि जितनी ऊंची उठती है वह उतना ही ऊंचा उडता चला जाता है। उसके काव्य की ध्वनि प्रकृति में साकार मानसिक प्रवृत्तियों सी मुखरित होती है। यह कहना नितान्त अनीति है कि छायावाद पश्चिम की कोई बडी भारी देन है। कुछ का कहना है कि छायावाद अंग्रेज़ी से बंगला में और बंगला से हिन्दी में आया। पर मैं कहता हूं कि यह कवि की स्वाभाविक शैली है एवं संस्कृत कवियों में सर्वाधिक गम्भीरता सुन्दरता, सूक्ष्मता और पूर्णता से मुखरित हुई है। छायावादी कवि की विशेषता यह है कि वह कला से जड में भी चेतना लादे।

प्रकृत्यात्मक चेतना संस्कृत कवि 'कालिदास' में महान् है। यह बात जर्मन के महाकवि 'गेटे' ने भी गाई है। उनके 'शकुन्तला' नाटक में तरुण वसन्त के फूल और परिणत वसन्त के फल तथा स्वर्ग और मर्त्य को प्रत्यक्ष पा हम काव्य की सच्ची परिभाषा पर आ जाते है, और यही छायावाद की विशेषता है। उनके

'शकुन्तला' नाटक मे प्रकृति कवि के हृदय की छाया ही नहीं अपितु 'शकुन्तला' की प्रिया सखी बनकर श्रृंगार करती है । आत्मा का तादात्म्य यहाँ तक कि प्रकृति वही हृदय होकर बोलने लगती है। प्रत्यक्ष के लिये ये पंक्तियाँ देखिये ....

'क्षौमं केनचिदिन्दु पाण्डुतरुणा मांगल्यमाविष्कृतम् ।
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोग सुलभो लाक्षारसः केनचित् ॥'❀
'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या ।' ★

यह याद दिलाकर 'कण्व' ने कहा—

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् । ⚘

तब वे बनवास के बन्धु तरु शकुन्तला को आज्ञा देते हैं—

अनुगत गमना शकुन्तला, ... +

यहाँ छायावाद भी बोल उठता है । यही नहीं 'मेघदूत' तो सारा ही बोलता हुआ छायावाद है । पत्तों की बजती हुई स्वागत बाँसुरी एवं वायु के व्यजनादि अनेक चित्र साक्षात हैं। केवल 'कालिदास' ही क्या संस्कृत काव्य सारा ही इस सुन्दरता से सज्जित है ।

ऐतिहासिक धारा मे सुन्दरता की ये अभंगुर लहरे बराबर दिखाई देती हैं। 'प्रेम मार्गी सूफी शाखा' और भक्ति काव्य मे यह वीणा बहुत मधुर बजी है । 'तुलसी' की सर्वांगीणता ने तो काव्य की परिस्थिति धारा और वाद का कोई अंग छोड़ा ही नहीं । ब्रज भाषा की स्वर लहरी

❀ किसी वृक्ष ने शुभ्र मांगलिक वस्त्र दे दिया, किसी ने पैर मे लगाने की महावर दे दी ।

★ हे तपोवन के वृक्षो ! जो पहिले तुम्हे पिलाये बिना जल नहीं पीती थी ....

⚘ वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब इसे प्रेम से विदा दो ।

+ कोकिल ने कूकने की आवाज़ से जाने की अनुमति दी ।

मे तो यह स्वर जवानी सा थिरकता है, रूप सा मचलता है, एवं शक्ति शील और सौन्दर्य का लालित्य लिये हुए है ।

पर आज की खड़ी बोली के काव्य मे इसका गम्भीर रूप हम 'जयशंकर प्रसाद' मे पाते है । उनकी 'कामायनी' केवल 'आनन्द' और 'रहस्य' सर्ग को छोड़कर छायावाद की चेतनामय अभिव्यक्ति है । वे चिन्ता काम सौन्दर्य श्रद्धा कर्म इडा आदि मानसिक स्थितियो की छाया शेष ब्रह्माण्ड मे खोजते हैं । अन्तर्जगत तथा बहिर्जगत की छाया तादात्म्य रूप से खेलती हुई आकर्षण करती है । क्या 'कामायनी' काव्य का छायावादी सौन्दर्य अनोखा नहीं ? क्या मर्मज्ञ ऐसा कह सकते है ?

हिन्दी काव्य की इस नवीन धारा मे यह प्रवाह मधुर स्वर मे गूंजता हुआ गा रहा है । करुणा, जीवन, सौन्दर्य, शृंगारादि की छाया प्रकृति में बोलती है । मैं तो समझता हूं जीवन और प्रकृति मे अन्तर निकालने के लिये यहाँ विज्ञान को असफल होना पडेगा । समालोचना के बुद्धिवादी स्वर मे छाया का रहस्य उलझाना 'प्रसाद' की "उलझी अलके ज्यो तर्क जाल", जैसी उक्ति है । छायावाद तो जीवन की कला है । इसका स्वर कला के चित्रो मे ही मुखरित होता है ।

यह तो सत्य है कि छायावादी काव्य ही सुन्दर काव्य है, पर यह उन्हीं के लिये सुगम है जो गहरे में उतर सके, जिन्हे अनुभूतियो पर मधुकर की तरह झूमना एवं परिभ्रमण करना भाता है ।

इस लोक में जो कुछ हम देखते हैं वह सब शून्य की छाया मात्र ही है । इसमें हम स्वयं भी छाया रूप है । वास्तव मे आत्मा और परमात्मा एक ही रूप हैं । पानी का बुलबुला पानी के ऊपर दिखाई देता है, यही परमात्मा पर आत्मा की छाया है, और बुलबुले मे जो चेतना है वह परमात्मा की छाया आत्मा में । सूर्य की छाया ज्योतिर्मय है । वह सबको प्रकाश देती है । पर उसकी छाया में उसके हृदय का दाह भी होता है । दुनिया दाह नही देखती । क्रमिक रूप से चॉद, तारे, रात आदि की छाया मे छाया पुरुष अभिनय करता है, तथा यवनिकाये उठती और गिरती रहती है । छाया चित्रो की तरह हम चित्र देखते हैं, तथा फिर अन्त मे

छाया विराट् मे लीन हो जाती है, क्योंकि जो कुछ भी साकार देखते हैं वह सब उस विराट् की छाया ही है। वास्तव में सब एक ही तत्व है। गीता में कहा है:—

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥×

अर्थ यह है कि उस विराट् की छाया के चित्र छाया पुरुष कवि तादात्म्य भाव से चित्रित कर छाया रूप मे शाश्वत रहता है। यही छाया कवि की कला है और यही कला वह तूलिका है जो अनन्त कलाकार कवि की प्रकृति में रचता है। कलात्मक कृति के ये छाया चित्र उनींदे नेत्रों के सदृश एक विचित्र झूले पर झूलते हुए गाते और रिझाते हैं।

जीवन की चेतना काव्य है, और काव्य की अन्तश्चेतना अनुभूति तथा अनुभूति में प्रकृति की चेतना छाया।

पर प्रकृति का घूंघट नहीं खुलता।

×मैं ही सूर्य रूप हुआ तपता हूँ तथा वर्षा को आकर्षित करता हूँ और वर्षाता हूँ और हे अर्जुन! मै ही अमृत और मृत्यु, सत् और असत् भी सब कुछ मैं ही हूँ।

रहस्यवाद

कलम पूर्ण की पहेली खोलने को रँगो मे भीगी, पर स्पष्ट रँग न भर सकी। वह परिक्रमा कर चरणामृत पीती रही। स्वाद की व्याख्या विस्तार बन गई। प्रेम गूंगा हो गया। कलम हारी, भाषा मूक हुई। प्रकृत अप्रकृत बना और कलम विचारो मे उलझी रही।

अदृश्य लोक से दृश्य लोक मे आते ही वह रहस्य मे उलझ गया। यवनिका उठते ही वह अभिनय और इन्द्रजाल को टटोलने लगा। आँखे रूप के लालित्य मे उलझ तत्व की खोज मे दौडी। त्वचा स्पर्श के लिये मचलती हुई चिता की कल्पना कर काँप उठी। मन रहस्य की रमणीयता मे उलझ कर रह गया। 'प्रसाद' के शब्दो मे —

हे अनन्त रमणीय कौन तुम, यह मैं कैसे कह सकता ?
कैसे हो ? क्या हो ? इस का तो भार विचार न सह सकता ॥

वह सत्य की ओर लपका, पर लालच ने लपक कर उसका आँचल पकड लिया। वह सुगन्ध की ओर उडा, पर फूल की पाँखुडियो ने उसके पर काट दिये। उसने बुद्धि से परे जाना चाहा, पर बुद्धि ने उसके पैरो मे जंजीरे डाल दी।

मर्त्य लोक की लीलामयी मनोहरता में मन मोर सा नाचता और पैरो को देख कर रोने लगता। क्योकि मन में प्रश्न उठता.—

क्या जग का परिचय मरघट की चिता किनारे तक ही ?
क्या इस रंग मंच का अभिनय गिरते तारे तक ही ?

और

कहाँ से आता है यह जीव, कहाँ को उड़ जाता है हंस !
प्रश्न यह हल होता ही नहीं, जीव है किस ईश्वर का अंश !

एवं फिर सोचने लगता है कि—

चित्रित सी कल्पना कुमुदिनी किस की अठखेली है?
भंगुरता की मूर्ति मनोहर कितनी अलबेली है?

तथा इस मनोहर माया के तारों मे उलझा हुआ कवि उदास हो कर कह उठता है—

जीवन और मरण मे जन की राह न जाने क्या है?

तथा

हरी डाल पर हवा झुलाती फूल व्यर्थ मुस्काता।
क्षणभंगुर दुनिया मे किसका किस से क्या है नाता॥

बस जब बुद्धि से इसका कोई उत्तर नही मिलता तो हृदय और बुद्धि तादात्म्य गति से ब्रह्म धारा मे तैरती हुई कह देती है—

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म।

यहाँ आते ही कवि छाया लोक छोड अद्वैत्य रस मे गाना चाहता है, पर भाषा वहाँ खो जाती है। उसके भाव ब्रह्म में झिलमिलाते है। उसका हृदय इस भौतिक संसार से ऊबा रहता है। उसकी बुद्धि शान्ति के लिये ब्रह्म के रहस्य में नतमस्तक हो श्रद्धा की शरण लेती है।

तथा कवि अपने प्रेमी का सम्पूर्ण कोष लिये भाषा की परिभाषा में उसे टटोलता हुआ गा उठता है—

किस के चरणों मे नत होता नव प्रभात का शुभ उत्साह

—कामायनी

एवं कहता है—

"हे विराट! हे विश्वदेव! तुम कुछ हो ऐसा होता भान।
मन्द गँभीर धीर स्वर संयुत यही कर रहा सागर गान॥"

—कामायनी।

इस प्रकार हृदय की चेतनायुक्त रहस्यमय भाव जगत ही रहस्यवाद है। दूसरे शब्दो में ब्रह्मवाद ही अनुभूति जगत मे रहस्यवाद है। 'शंकराचार्य' की अद्वैत उपासना ही रहस्यवादी भावना है। गीता की भौतिक नश्वरता तथा आध्यात्मिक सत्य ही रहस्यवाद है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।। |

तथा—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।+

तो प्राणी आकर्षण और सत्य के रहस्य को खोजने लगता है। एवं 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च'❋ का रहस्य खोलने के लिये कल्पनाये करता है। कल्पना की उड़ान मे वह सारी गीता को दुहता है, और जब उसे यह उत्तर मिलता है कि ये पर्वत. सूर्य, सागर, प्रकृति दिन रात सब मैं ही हूं, साथ ही—

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो ।
मत: स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥
वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यो
वेदान्तविद्वेदविदेव चाहम् ॥×

इस प्रकार गीता के पारायण से जो ब्रह्म रहस्य का आस्वादन मिलता है उस स्वाद की भावनायें ही कल्पना की भाषा में रहस्यवाद हैं।

ब्रह्म का रहस्य आज तक नहीं सुलझा। वह केवल अनुभूति का विषय है, भाषा का नहीं। बिल्कुल स्पष्ट होते हुए भी वह रहस्य है। यह कैसे रहस्य की बात है कि प्राण भी वही है, देह भी वही है, अग्नि भी वही है, अन्न भी वही है, जल भी वही है। अर्थात् जो कुछ दृश्य और अदृश्य है वह सब ब्रह्म है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान सब वही है।

| जीव अविनाशी है।

+शरीर नाशवान है।

❋उत्पन्न की मृत्यु और मृत का जन्म ध्रुव है।

×मैं सब के हृदय मे स्थिर रहता हूँ। स्मृति ज्ञान और सब का आवेष्टन मुझ ही से होता है। समस्त वेदो का ज्ञेय मैं ही हूं। वेद और वेदान्त का मर्मज्ञ मैं ही हूँ।

इस प्रकार ब्रह्म ही ब्रह्म को खाता है। ब्रह्म ही ब्रह्म को भोगता है। ब्रह्म ही ब्रह्म को प्रेम करता है। अर्थात् जो कुछ है सब ब्रह्म ही। शेष सब चक्कर काटते हुए उन डोलो के जल से हैं जो खेतो पर भरते और खाली होते रहते है। यही तो वह रहस्य है जो भाव जगत मे रहस्यवाद है। जीव और प्रकृति का तादात्म्य भाव गीतो के स्वर मे रहस्यवाद कहलाने लगता है। रहस्यवाद मे गाता हुआ कवि विस्तार में इतना लीन हो जाता हैं कि वह स्वयम् पहेली के परों पर तैरता हुआ दिखाई देता है। रहस्यमयी भावनाओं के साथ वह कही कहने लगता है कि—

"प्रेम तरु को ढूँढती है लीन हो कर आज छाया।"

एवं और भी—

"सौरभ फैल रहा जिसका यह केसर का वह फूल कहाँ है ?"

तथा—

धूप सौरभ मे मिली अलि ! धूप मे सौरभ मिला वह।
मिल गया जल मे जलज अलि ! नीर नयनों से गया वह॥

अन्यपि—

"क्या धरा पर ढूँढते है खँडहरों के नयन गीले ?"

× × × ×

"ह्रस्व हरियाली हुई है दीर्घ सत् विस्तार मे लय।"

रहस्य वह है जो गूढ रहे। व्यक्ति उसे समझ तो लेता है पर शब्दो मे व्यक्त नही कर पाता।

रसना रस का स्वाद लेती है पर शब्दों में व्यक्त करते समय वह तुतलाने लगती है। रस-अनुभूति की वह तोतली भाषा ही रहस्यवाद है।

आज रहस्यवाद पर विचित्र विचित्र मत प्रकट किये जा रहे हैं। दुरुह भाषा में गम्भीर भावो के चित्रो को भी आज रहस्यवाद की श्रेणी मे रखने का अनभिज्ञतापूर्ण प्रयास भी हम देखते हैं। वास्तव मे रहस्यवाद बुद्धि से परे के सत्य का हार्दिक निरूपण है। ईश्वर और सृष्टि

का क्या सम्बन्ध है ? ईश्वर क्या है तथा जीव क्या है ? अर्थात् संसार की क्रियाशीलता का रहस्य उलझा ही रहता है। ईश्वर और सृष्टि की क्रियायें स्पन्दित तो होती हैं, पर स्पष्ट नहीं होती। उत्पत्ति और लय की यह लीला ही तो रहस्य है। बड़ा विस्मय है इस भंगुर संसार की लीला में। कभी कभी इस नश्वरता की कल्पना से हम कितने वैरागी बन जाते हैं। ईश्वर और प्रकृति का रहस्य संसार आदि काल से सुलझाने का यत्न करता चला आ रहा है, पर अभी तक यह पहेली सुलझ नहीं पाई। शायद यह सुलझेगी भी नहीं। और यदि कोई सुलझा कर स्वाद चखेगा भी तो और को प्रत्यक्ष न दिखा सकेगा। चिन्तनशील समुदाय की चिन्ता बनी ही रहेगी। सीमा असीमा में ही रहती है, पर असीमा की थाह नही बन पाती। अतः असीम के लिये सीमित हृदय प्रेम उत्कण्ठा एवं चाव से पिघल कर अन्वेषण के लिये दौड़ता है। यही रहस्यवाद का मूल स्रोत है। यही रहस्यवाद की वह गंगा है जो पता नहीं पहाड़ के कौन से स्थल से चल समुद्र की गहराई में मिल स्पष्ट नहीं होती।

अर्थात् यह कहिये कि चिन्तन जगत में जो दार्शनिक ब्रह्मवाद अथवा अद्वैतवाद है, भावना जगत में वही रहस्यवाद है। कवि जब शान्त रस में लीन हो प्रेम की अमूल्य निधि लिये अपने प्रभु के विस्तार को परिधि में बाँधने का प्रयत्न करता है तभी उसकी कविता रहस्यवादी कहलाने लगती है। रहस्यवाद में कवि अनन्त की अठखेलियों को समझने का प्रयत्न करता हुआ अपने प्रेम को भाषा में बाँधता है। रहस्यवाद में सच्चा एवं अभंगुर प्रेम रहता है। एक रूप से कह सकते हैं कि यह अभंगुर प्रेम भाव जगत की भाषा में साक्षात् ईश्वर-दर्शन है।

भारतीय ग्रन्थों में ब्रह्मवाद एवं अद्वैतवाद का सुन्दर तथा विस्तृत वर्णन है। ईश्वर और प्रकृति के रहस्य को जितना भारतीय दर्शन ने सुलझाया है उतना किसी साहित्य ने नहीं। गीता इस विषय का प्रधान ग्रन्थ है,। यही नहीं भारत का प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्म वाद को मानता है। संसार की नश्वरता तथा ईश्वर की सत्ता ही यहाँ का सत्य है। और यह प्रत्यक्ष भी है कि मैं क्या हूँ, ये महल क्या हैं ? यह प्रकृति और यह सब

स्वरूप क्या है ? वास्तव में जो कुछ है वह एक ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही ब्रह्म को खाता है। ब्रह्म ही ब्रह्म को देखता है। ब्रह्म ही ब्रह्म को भोगता है। तत्व ही तत्व के प्रकार हैं। रोटी भी ब्रह्म है और मल भी ब्रह्म। साकार भी ब्रह्म है और निराकार भी ब्रह्म। कृति में केवल रूपान्तर होता रहता है।

पर यह सब ज्ञानियो तथा वैरागियो के जगत की बात है। काव्य जगत का रहस्यवाद भावना प्रधान है। उसमें हृदय का वास होता है। कवि ज्ञान की माला लेकर मुक्ति के लिये तपस्या नहीं करता, वह भावनाओं और रहस्य के चित्र खींचने के प्रयत्न करता है। वह भावातिरेक द्वारा भावात्मक ऐक्य स्थापित करता है। यद्यपि ज्ञानी और कवि का आशय एक ही होता है पर कवि भावजगत का फूल है और ज्ञानी आध्यात्म लोक का भोक्ता। ज्ञानी दर्शन के शीशे में देखता है और कवि भावो के दर्पण मे दिखाई देता है।

दैवी शक्ति का कोई न कोई स्फुलिग जीव मे निहित है। उसी स्फुलिंग द्वारा वह अखण्ड सत्ता की अनुभूति करने मे समर्थ है। जिस प्रकार बुद्धि से भौतिक पदार्थों का निरूपण किया जाता है उसी प्रकार ईश्वरीय भावना द्वारा उस अखण्ड ज्योति से कवि हृदय का साक्षात्कार होता है। बुद्धि और भावना के क्षेत्र मे अन्तर है। भावना मे तर्क नही होता, बुद्धि मे तर्क होता है। अत. भावना मे प्रकृति और परमात्मा का ऐक्य रहता है।

रहस्यवाद को केवल तात्विक तुला पर तोलना कृपणता है। दार्शनिक चमत्कार मे ही रहस्यवाद की इति नहीं। दार्शनिक दृष्टि भी रहस्यवाद की एक रेखा कही जा सकती है। और यही दार्शनिकता भाव जगत की भूमि पर तत्ववादी रहस्यवाद है।

जीवात्मा और परमात्मा सम्बन्धी आध्यात्मवाद को भावजगत मे आध्यात्मिक रहस्यवाद कहना चाहिये। इसमें ईश्वर की अनुभूति का अधिक आलोक रहता है। धर्म की धुरी पर घूमने वाला रहस्यमय काव्य धार्मिक रहस्यवाद है। इसमें कवि धर्म की लहरे देख कर पकडने का प्रयत्न करता है। लेकिन न तो लहरें पकड मे आती हैं और ना ही धार्मिक

रहस्यवादी धर्म की लहरे पकडना छोडता है।

पर प्रकृति मे सब कुछ लीन है। प्राकृतिक रहस्यवाद में समष्टि होती है। उसका विस्तार कलम से आगे बढ जाता है। प्रकृति में कवि अनन्त रमणीयता की प्रत्यक्ष अनुभूति करता है। अनन्त प्रेम और सौन्दर्य के अर्थ मे प्राकृतिक रहस्यवाद रसात्मक है।

रहस्यवाद में छायावाद की तरह कलापक्ष प्रधान नही होता। रहस्यवाद में अनुभूति और भावो की भरमार होती है। प्रतीक योजना शाब्दिक न हो कर सांकेतिक होती है। कवि संकेतो से विभु को बताना चाहता है। वह खोया खोया सा इस प्रकार कहता रहता है जैसे कोई समझता तो हो पर भाषा के अभाव में हकलाता हुआ अस्पष्ट कह रहा हो। यही रहस्यवाद की स्पष्ट रेखा है। जिस रेखा पर शान्त और वात्सल्य की सुरभि उड़ती है।

भाव-जगत मे रहस्यवाद के अलग अलग निर्झर मानने चाहिये। जैसे अनुभूति मे प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी रचनाये, प्रकृति सम्बन्धी रचनाये, उपासना सम्बन्धी रचनाये, संसार की निस्सारता से दर्शन सम्बन्धी रचनाये। वास्तव मे तो कवि की वह स्थिति जो घोर निराशा के समय तत्व खोजती हुई खोयी रहती हैं वही सच्ची रहस्यवादी रचना है।

कुछ आज के पश्चिमी साहित्य से प्रभावित व्यक्तियो का कहना है कि रहस्यवाद परिचम की सौन्दर्य उपासना से निकला। किन्तु कविता मे वाद कोई विशेष या पृथक् वस्तु नही है। कवि लिखते समय कोई वाद विशेष अपने मस्तिष्क मे नही रखता। कवि के हृदय की जैसी स्थिति होती है स्वभावत. वही रूप कविता बनकर झलक उठता है। कविता भी किसी विशेष चिडिया का नाम नही है, यह केवल कवि की अनुभूति है। संसार मे मनुष्य का हृदय हिलते हुए पत्ते के सदृश होता है। न जाने किस किस स्थिति मे कितनी कितनी भावनायें उसमे उठती हैं। कवि इन अनुभूतियो के चित्र रचता है, तथा शास्त्रीय विवेचन उन्हे वादादि के मंचो पर प्रदर्शित करता है।

रहस्यवाद हृदय की कोई ऐसी रेखा नही जो चलते फिरते खीच

दी जाये। यह हृदय की वह सत्यमयी भावना है जो अनेकों वातचक्रों मे घूम कर प्रकृति के घूँघट में झाँकती हुई दिखाई देती है।

कविता भावनामयी होती है, ज्ञानमयी नही। यह बुद्धि का विषय नही, हृदय का विषय है। दूसरे शब्दों में कविता को श्रद्धा का स्वरूप कह सकते हैं। श्रद्धा सत्य की भावना है। इस भावना को कवि प्रेम कहता है। कवि के इस प्रेम का दीपक किसी झंझा में बुझता नही। चिता में देह जलता है पर कवि का प्रेम नही। कवि के हृदय का प्रेम सब कुछ प्रियतम पर न्यौछावर करने की तड़प लिये विस्तार मे प्रियतम को खोजता फिरता है। उसके प्रेम के पथ में ज्ञान की गीता उसे आकर्षित नहीं कर सकती। वह तो प्रेम के पुष्प लिये प्राण चढ़ाने को आकुल रहता है। वह अपना प्रेमार्घ्य लिये जितना प्रियतम की ओर बढ़ता है प्रियतम उतना ही रहस्यमय बनता जाता है, और अन्त मे जब वह माया का आवरण हटने पर प्रियतममय हो जाता है तो उसे प्रेम का स्वाद मिलता है। पर उस स्वाद को शब्दों में स्पष्ट नहीं कर पाता। अनुभूति तो करता है पर आनन्द का आकार नहीं रच पाता। उसके प्रेम का दाह प्रकाश की लौ में ज्योति बनकर झलकता तो है पर निष्कम्प दिखाई नहीं देता।

प्रेम की यह अमर ज्योति ही रहस्यवाद है।

———

अनुभूति और काव्य

पीड़ा प्रेरणा एवं अनुभूति की प्रतिमा कविता है। जब मानस उमड़ उमड़ कर आता है तो आँखें बरसने लगती हैं, ओठ काँपने लगते है। शून्य मे फैली हुई बाँहे जब लेखनी से आंसुओ को चुग चुग कर अंकित करती हैं तभी तो कविता नाम की परी का प्रकृति मे नृत्य होता है। तभी तो जीवन मरण को खोजता है और मरण जीवन को। प्रेम की प्यास बढ़ती है, पर प्रिय के दर्शन नही होते। लोचन सौन्दर्य के लिये ललचाये रहते हैं, पर सौन्दर्य घूँघट नहीं खोलता। मुँह में बात होती है, पर अधर नहीं खुलते।

कविता की आत्मा करुणा है। यह करुणा कवि के हृदय की वेदना होती है, उसके जीवन की तड़प होती है। उसके श्वासो की स्पन्दित हिचकियाँ ही तो कविता के रूप में निकलती हैं। उसकी निराशा ही मे तो संसार की आशा थिरक कर उस की चोटें दुखा जाती है। उसकी आँखो की वर्षा ही मे तो दुनिया आनन्द की मदिरा पीती है। उसकी कोमलता मे विश्व की कर्कशता क्रीड़ा करती है। उसकी भावना में भयानकता भी भावुकता की छाया बन कर आती है। उसके आंसुओ के साथ शेष जगत की आँखें बरसती है। उसकी मुस्कान के साथ सारी प्रकृति मुस्कराती हुई दिखाई देती है। उसके हृदय के साथ जड और चेतन का हृदय जुड़ा रहता है।

अनुभूति अन्तश्चेतना है। मन की शाश्वत स्थितियों से ही अनुभूति होती है। इन सतत भावनाओ के आधार पर ही काव्य में रस है। प्रेम, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, विस्मय, वात्सल्य, निर्वेद विभूषित स्थितियाँ सदैव रहती है। कवि की वाणी में ये अनुभूतियाँ करुणा से काव्य बनकर निकलती हैं।

जब कवि रोता है तो गीत निकलता है। जब कवि कल्पना करता है तो कविता बरसती है। जब कवि पीडा की टीस से व्याकुल होता है तो प्रकृति से प्रश्न करता है। प्रकृति उसे उत्तर देती है। ये प्रश्न और उत्तर ही तो काव्य हैं।

भंगुर और अभंगुर की उलझन में उलझा हुआ कवि रहस्य को टटोलता है। वह हर कम्पन मे कुछ न कुछ खोजता रहता है। वह जितना निकट होता है, दूरी उतनी ही बढती जाती है। उस की आराधना पूरी होती है पर साध पूरी नही होती। उसकी यह आराधना अनुभूति से होती है। उस की अर्चना के फूल आँखो के आंसू होते हैं। वह खिले हुए फूलो को तोड कर आराध्य के पैरो मे नही चढाता। वह मुस्काते हुए फूलो को तोड प्रेयसी के कण्ठ की माला नही गूंथता। फूलो को लगाने एवं खिलाने वाला माली चाहे भले ही खिलते फूलो को तोड ले, पर कवि के कोमल हाथ यह कठोर काम नहीं करते। वह फूलो से बोलता है, बातें करता है, उनके हँसने पर न्यौछावर होता है, पर तोड कर उनका जीवन समाप्त नहीं करता, संसृति को सौन्दर्य से शून्य नही करता। क्या कभी इतनी कोमल करुणा उस माली मे भी आयेगी ?

कवि की पूजा के दीप प्राकृतिक होते हैं। उसके रोमांच ही तो पूजा के अक्षत हैं। उसके जागे एवं बरसते लोचनो की लाली ही तो सुन्दरता का सिन्दूर है। उसके हृदय से बहती हुई गंगा ही तो अर्घ्यधारा है।

काव्य-कुसुमाकर के फूल कवि की असीमित वेदना से फूटते हैं। संसार उनके सौरभ पर मुग्ध रहता है। यह सुगन्ध असीमित पीडा के बीज से जन्म लेती है। इसकी आत्मा अनुभूति के करुणासिन्धु मे तैरती है। सच्चा कवि जो कुछ लिखता है, वह अनुभूति होती है। अनुभूति से परे काव्य है ही नहीं। अनुभूति जितनी गहरी होगी, कविता उतनी ही तल्लीनता से निकलेगी। हृदय की अनुभूति जितनी हरी होगी कविता की हरियाली उतनी ही रसमयी होगी। जिस काव्य में अनुभूति नहीं, वह तुकबन्दी है, निर्जीव है। सच्चे भावो की अनुभूति ही अमर कविता है।

कवि की अनुभूति कोई सस्ती भावुकता नही होती, प्रेम की

अभंगुर भावना का नाम ही अनुभूति है। पीड़ा की निर्झरणी ही अनुभूति की भावना है। कवि जो कुछ कहता है वह शास्त्रो एवं लक्षण ग्रन्थों के पन्ने पलट कर नहीं। उसका गीत प्रेम की तड़प से निकलता है। कवि विद्वानों की कोटि का कोई असाधारण विद्वान भी नहीं, वह तो साहित्य-मन्दिर का देवता है। कवि विज्ञान का कोई विषैला यन्त्र नहीं, भावजगत का दानी ऋतुराज है। कवि विषमता का विष नहीं, आत्मैक्य का आनन्द है। आनन्द का यह अमृत प्रेम के विस्तार एवं निराशा के नयनों से बरसता है। वियोग की अग्नि विद्युत की कौंध बनती है, एवं विद्युत की कौंध जलधार बन मेघों से बरसती है। कवि अनुभूति की अलकों में इन मोतियों को गूँथता है।

कवि अपनी अनुभूति का शृंगार करता है, कल्पना से, प्रकृति से, तुलना से, विस्तार से। चाँद, सूरज और तारे उस की अनुभूति में चमकने लगते हैं। बसन्त के फूल उसकी अनुभूति के आँगन में बिखरे फिरते हैं। मधुर भाषा के परिधानों में करुणामयी अनुभूति कोमल कविता का रूप ले रसों की चन्द्रोज्ज्वल सरिताओं में तैरती हुई रिझाती है।

मैं कह चुका हूँ कि कविता की अन्तश्चेतना अनुभूति है। आप किसी भी सच्चे कवि के जीवन के पन्ने पलटिये, वह दुःखों के अतल सिन्धुओं में तैरता हुआ मिलेगा। कवि की ज़िन्दगी में पीड़ा के अतिरिक्त कुछ होता ही नहीं। कृष्ण से कुन्ती ने वरदान मे दुःख माँगे थे, जान पड़ता है ईश्वर ने कवि को यह वरदान बिना माँगे दिया है। कवि हृदय की जलती चिता पर आँसुओं का काव्य लेकर बरसात में चलता है। निराशा का खारी नीर पीता हुआ बिचारा न जाने कितनी पीड़ाओं की अनुभूतियाँ लिये गाता है। उसके स्वर मे रुँधा हुआ कण्ठ होता है। उसके अधरों की मुस्कान मुस्कान नहीं होती, बड़वानल की दमक को संसार मुस्कान समझता है।

कवि की प्रत्येक कविता की एक कहानी होती है। बहुत बड़ा इतिहास होता है उसकी किसी भी एक कविता के पीछे। वह जो कुछ लिखता है अपने ऊपर बीती हुई लिखता है। मानो सब के दुःख उसके सामने

साकार हो कर अपनी कहानी कहते हैं। वास्तव मे कवि की कल्पना भी अनुभूति ही होती है। वह शेष जगत में अनुभूति का ही प्रतिबिम्ब देखता है। कवि की भाषा भाव शैली का निर्माण अनुभूति ही करती है। कवि अपनी अनुभूतियों के चित्र खीचते समय भाषाविज्ञान का पंडित नहीं होता। वास्तव में तो कवि आन्तरिक अनुभूतियों को कल्पना के परिधानों में सजाता हुआ भाषा के स्वरूप को भूल जाता है। वह भाषा के राज्य में नहीं रहता, भाषा उसके साम्राज्य में रहती है।

अमर कविता वही है जिसमें अनुभूति है। शेष कविताओं की आयु अल्प होती है। कुछ तो गर्भ ही मे से मरी हुई आती हैं, तथा कुछ खुली हवा देखते ही जड हो जाती हैं। कुछ का इतिहास दस दिन का होता है तो कुछ का दस पाँच वर्ष का। इतिहास के पन्नों पर न जाने कितनी कविताओं ने जन्म लिया और कितनी मर गईं। समय की बाढ के साथ कविताओं में भी बाढ़ आती है एवं समय के साथ ही साथ वे मृत्यु-शैया पर सोजाती हैं। इतिहास के पृष्ठों के साथ रची हुई रचनाओं का मूल्य सामयिक उपयोग और इतिहास के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता। आज़ाद हिन्द सेना की चर्चा एवं राष्ट्र की हुंकार में जो रचनायें हुईं, उनसे राष्ट्र को चेतना मिली, देश मे गति आई, उत्साह की लहरें दौडीं, किन्तु उनका कोई प्रत्येक देश, प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक युग एवं प्रत्येक स्पन्दन से आत्मिक नाता नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि इस युग की कलाकृतियों में राष्ट्र की अन्तश्चेतना झाँकी।

अनुभूतियों ने राष्ट्र की चेतना को आकार दिया, तथा जेल जीवन आदि के आँसू कविता बन कर फूट पडे। क्रान्ति काल के रक्तिम वातावरण में निहत्थों पर जो बीती वह कुछ कवियो के हृदय की पीडा बन कर निकली। बन्दीगृह में वियोग और पीडा के स्फुलिंग कविता रूप में दमक उठे। लाठियों और गोलियो की वर्षा मे उछला हुआ शोणित कविता की लाली बनकर बोल उठा। हिंसा के सामने बापू की अहिंसा की तरणी शान्ति की काव्य धारा में तैर चली।

पर इन सब की चेतना में कवि का अनुभूति भरा हृदय ही है। जिसके हृदय मे वेदना की टीस जमी हुई है वही पीडा की श्वासें पहिचान

कर जो कुछ कहता है वह काव्य है। सच्चा काव्य वही है जिसकी क्रीडा वेदना के विस्तार में है। इसी सत्य अनुभूति से काव्य का जन्म हुआ है। आदि कवि वाल्मीकि का हृदय वेदना से द्रवित हो काव्य बन कर बरस पड़ा।

वेदना ही तो आदि कविता की कहानी है। किसी भी कवि की कहानी देख जाइये, वह जीवन में बहुत दुखी मिलेगा। करुणा ही उसके अधरों की मुस्कान होगी। उसकी कविताओं में जितने आँसू तुम्हें दिखाई दें, उन्हीं में उसकी पीड़ा की इति न मान बैठना, वह पीडा तो प्याले की छलक मात्र ही होती है।

कविता में कवि का हृदय झाँकता है। मनन एवं भावना से देखने पर काव्य में कवि का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। कवि के जीवन की झलक समष्टि के हर स्वर में स्पन्दित होती रहती है। कवि की आत्मा ही काव्य की आत्मा है। यह आत्मा ही काव्य में रस है। इस रस का विश्लेषण करने पर हम कवि अनुभूतियों को टटोल सकते हैं। कवि के जीवन की कहानी कल्पना के परिधानों में लहरती मिलेगी।

कविता बुद्धि का विषय नहीं, हृदय और भावना का विषय है। अत जहाँ हृदय एवं अनुभूति से परे कवि ने कुछ कहा, वहीं काव्य में सुन्दर खो जाता है। कवि का सुन्दर कल्पना की ऊँची उड़ान और कलम की बारीक जाली में ही आँखों को बन्दी बनाये झिलमिलाता है।

यह भी सत्य है कि अनुभूति केवल दुःख ही में नहीं होती, सुख में भी होती है। जीवन के हर डग पर प्रत्येक प्राणी कुछ न कुछ अनुभव करता है। रीझ खीझ, उत्साह, प्रेम, संयोग, वियोग, हास, निर्वेद आदिक अनेक स्थितियों में मनुष्य विचरता है। एवं कवि अपनी प्रत्येक स्थिति में व्यष्टिगत भावनाओं को समष्टिगत शीशे में देखता हुआ दिखाता है। अधरों की मुस्कान और जीवन की मस्ती में भी उसका स्वर गूंजता है। पर जीवन की गहराई वह पीड़ा के असीमित सिन्धु से ही खोज कर लाता है। पल भर की मुस्कान में चाहे कवि कहे—

अलि ! अंगूरी रात चॉद को चूम रही इठलाती ।
पात पात पर मधुर ज्योत्सना झूम रही बलखाती ॥
अधर मे अधर मिले आली !
प्रिया ! उन अधरों की प्याली ।
रात रंगीन पियो जी भर ।
चॉदनी बनी प्रिया प्रिय पर ।
पल्लव के झुरमुट मे कोई थिरक थिरक गा जाती ।
अलि ! . . ..

पर खारी सिन्धु की यह एक बूंद पीडा की अपार तपस्या से ही मिली हुई दीखती है । तभी तो उसमें इतनी तल्लीनता है। जैसा कि पहिले कहा है कविता का बीज पीड़ा है । खारी आँसुओं से सिच कर ही फूल खिलते हैं । ये फूल अनेक रसों और रँगो के हो सकते हैं। भिन्न भिन्न उपवनों में खिल भिन्न भिन्न रुचियों को पृथक पृथक सुगन्ध दे सकते हैं। पर जिस बीज के ये रूप होंगे, वे बीज वेदना के निरीह आँसू ही होंगे, संसार की कठोरता से पाप बने हुए अम्लान आदर्श ही होंगे, आकुल अन्तर के अनमोल मोती ही होंगे। कोमल कवि सुमित्रानन्दन 'पन्त' की उक्ति मे 'आह से उपजा होगा गान' तथा इसी प्रकार 'बच्चन' जी की भाषा में "मैं फूट पडा. तुम कहते छन्द बनाना" आदि गीत पीडा के चित्र बन कर क्रीडा करते दिखाई देते हैं । इस प्रकार की भावनायें प्रायः प्रत्येक कवि की वाणी से आकार लेकर गीतों के रूप में प्रकट हुई हैं । ये अनुभूतियाँ पल भर की भावुक लहरें नहीं होती । इन अनुभूतियों की धाराओं का जल प्यास बन कर मचलता रहता है ।

कवि लिखते समय पाण्डित्य प्रधान नहीं होता। वह अपनी विद्वत्ता और ज्ञान का परिचय देने के लिये नहीं लिखता । उसकी लालसा व्यापार की नहीं होती । वह चाहता है अपने हृदय की अनुभूति जग के हृदय की प्रतिमा के रूप में देखना । वह लेखनी तभी उठाता है जब उसके सामने जीवन मृत्यु के रूप मे खड़ा हो, जब उसके आँसू बहुत रोकने पर भी कागजो

पर बिखर पड़ते हो, जब धरती उसके मन में रोती हो, जब समय रक्त और आँसुओं की फुहारो में क्रीडा करता हो, जब जीवन और मरण की समस्या सुलझाये नहीं सुलझती हो।

प्रश्न उठ सकता है कि क्या महाकाव्य आदि कथात्मक काव्य अनुभूत्ति के ही रूप हैं ? क्या वे इतिवृत्तात्मक नहीं होते ? उत्तर में कहना होगा कि इतिहास काव्य में अनुभूति सौन्दर्य रस तथा प्रेरणा के अखण्डित प्रकाश में दिखाई तो देता है, पर वह स्वयम् ही प्रकाश नहीं होता। यदि कहानी और इतिहास टीले से स्पष्ट खडे दिखाई दें तो समझना चाहिये कि वह काव्य नहीं, बोझल तुकबन्दी है। काव्य तो प्रेरणा से निकलता है। कवि जिससे प्रेरित होता है, वही उसका हृदय बन जाता है। वह जो कुछ लिखत' है, धारा प्रवाह में लिखता है, भावना में लिखता है, अनुभूति एवं प्रेरणा से लिखता है। लिखते समय वह यह नहीं देखता कि इसमें यह अलंकार आये, अमुक रस रचा जाये, वह छन्द हो। कवि की अनुभूति भाषा में व्यक्त होने पर जब हम देखते हैं तो उसमें चमत्कार और अलंकारो की सजधज पाते हैं, रसात्मकता अनुभव करते हैं, गति की समीरण-सुरभि का आस्वादन करने है, ओज प्रसाद और माधुर्य आदि गुणों की गरिमा देखते हैं। किन्तु कवि अनुभूति को कल्पना के विस्तार में व्यक्त करता है, छन्द अलंकार आदि शास्त्रीय परिभाषाओं की परिधि में नही। कवि के हृदय से जो अनुभूति जग के हृदय की बात बन कर जिस शैली में भी निकले वही छन्द है। सच्चे कवि के हृदय से कोई न कोई नया छन्द अवश्य निकलता है।

छन्दों की वेडियों और हथकडियों में शब्दों को बन्दी बनाना कविता नहीं। विचार और अनुभूतियाँ गति मे आ छन्दो का निर्माण स्वयम् कर लेती हैं। धारा प्रवाह में जो शब्द हृदय से निकलते हैं वे ही काव्य हैं। कविता कोमल भावनाओं की रसमयी सरिता ही तो है। यह सरिता कवि के जीवन की वह गति है जो संसार के कूलों से टकराती हुई कंकरीले पथरीले पथ पर बहती है।

समय की शिला पर इतिहास भी खो जाता है। न जाने सुबह

और शाम के आवर्त्तनों मे कितने प्रत्यावर्त्तन हैं। क्या नया है और क्या पुराना यह कुछ कहा नहीं जा सकता। पर इतना अवश्य है कि जो समय के चरणो के नीचे दब जाये वही पुराना हैं तथा जो समय की चादर में ढके नही एवं प्रतिकूल वायु में भी उड न जाये, वही नवीन है। या यह कहो कि जिसके प्रतिकूल हवा चल ही न सके, वही नया है।

यह स्थिरता अनुभूति के रसात्मक काव्य में ही होती है, एवं यह अमरता आशा निराशा की घोर व्यथा से ही जन्म लेती हैं। कवियो के जीवन का इतिहास यही बताता है। कवियो के काव्य के अन्तराल से हम यह रस निचोड सकते हैं। प्राचीन काव्य की विस्तृत विवेचना कर मैं इस निबन्ध को ग्रन्थ नहीं बनाना चाहता। पर प्रत्येक काव्य में आप यह सत्य पायेंगे।

पश्चिम के कवियों की कहानियाँ जिन्होंने पढी हैं वे जानते हैं कि कवि-काव्य क्या है। गेटे, शैले, कीट्स आदि की जीवनी बडी उथल पुथल की रही है। जिसे संसार महाकवि गेटे के नाम से पुकारता है उसने गालियाँ जूते और ठोकरें भी खाई है, नर्क ही से स्वर्ग खोजकर लाया है। दुःखों की दीपित आह ही उसका प्रकाश हं। उसका काव्य जो कुछ है क्षुब्ध गतिविधि की नयी रेखा है। उसका हृदय स्नेह परिप्लुत था। 'सैसनहाइम' नामक गाँव के पुरोहित की कन्या 'फ्रैडेरिके ब्रियोन्' से प्रेम कर गेटे ने 'संयोगान्तः विप्रयोगान्तः' वाली उक्ति चरितार्थ की, और इसी प्रेम के फलस्वरूप उसने अनेक गीतो की रचना की। युवा वार्टर का 'शोक' नामक उपन्यास भी मानसिक उथल पुथल का ही एक चित्र है।

पता नहीं 'गेटे' क्या टटोलता था ? वह प्रेम की प्यास लिये व्याकुलता में खोया खोया सा दिखाई देता है। उसने 'फ्रांक फोर्ट' के एक बैंकर की पुत्री 'एलिज़ाबैथ शेओनेमान' से प्रेम किया, पर प्यास न बुझ सकी। पारिवारिक समस्या ने पथ रोक लिया। इसी प्रकार 'स्टाइन' का स्नेह और 'ड्यूक' की आदि परिस्थितियाँ उसे जीवन भर हिलाती रहीं। सामाजिक और नैतिक आँखो से देखने वाले भले ही उसे पत्थर की आंखों मे देखें, पर मैं तो उसे तृषा की आँखों से देखता हूँ। उसने जो कुछ लिखा, वह सुन्दर

हैं, अनुभूतियों का प्रकृतिमय चित्र है। पर उसका जीवन प्रेम के प्याले का प्यासा रहा है। जीवन उसकी प्यास न बुझा सका। 'गेटे' वास्तव में—

"... was a creator within the creation, a reason within all reason, a nature within nature"

मैं कह रहा था कि काव्य अनुभूतियों का चित्र है। कवि 'गेटे' की सूक्तियाँ यह सिद्ध करती हैं। वह कहता है —

"बन ले वियोग का अभ्यासी इच्छित हो यदि परिपूर्ण प्रेम ॥"

"यह बात तुम्हारे हृदय से उत्पन्न नहीं हुई है तो तुम कदापि दूसरों को प्रभावित नहीं कर सकते।"

"जो स्रोत स्वतः तेरे हृदय से फूट कर नहीं निकला उससे तुझे सच्ची तृप्ति कदापि नहीं मिल सकती।"

"भाग्यवान वह है जो विशुद्ध सत्य को अपने हृदय में धारण किये रहता है। उसको किसी बलिदान पर पश्चात्ताप नहीं होता।"

'मिल्टन' की महानता भी प्रेयसी की मृत्यु की अनश्वर कहानी ही है। 'कीट्स' ने हवा और पानी पर ऊँगलियाँ चलाते हुए न जाने कौन कौन से स्वप्न की कहानी लिखी है। इस प्रकार की कहानियाँ ही कवि की कवितायें हैं। कवि का जीवन क्षणिक है पर उसके जीवन की कला अनन्त समय की सुनहरी रश्मि है।

कवि किसी देश काल की निधि नहीं। वह तो प्रत्येक देश और प्रत्येक समय का धन है। हर देश एवं काल के मिल्टन, गेटे और सेक्सपीयर हैं तथा हर लोक और युग के कालिदास, भवभूति, तुलसीदास और प्रसाद धन हैं। भारत का काव्य निरन्तर झरने वाला अमृत है। अमृत के ये झरने जितने मधुर हैं उतनी मधुर रेशमी प्यालों की नमकीन चाय नहीं। अनुभूति कवि की आँखों की खारी सरिता होते हुए भी संसार के लिये अमृतमयी त्रिवेणी धारा है।

यह त्रिवेणी बहुत उज्ज्वल और बहुत मधुर शब्द करती बह रही है। आज भी इस धारा में आँखों से जो अर्घ्य चढ़ता है वह काव्य

की धारा मे और करुणा घोल देता है। अर्घ्य की ये बूंदें अनुभूति की भावनायें हैं। 'बच्चन' जी अपनी पूर्व पत्नी के देहान्त पर कहते हैं—

'राख मेरे हाथ में है, माँगती सिन्दूर दुनिया।'

इसी प्रकार मैथिली शरण जी गुप्त अपने पुत्र की मृत्यु पर कहते हैं —

'मेरे आँगन का एक फूल—

तथा उसकी मृत्यु पर जिसकी अब याद ही रह गई है मेरे हृदय से ये पंक्तियाँ फूठ पड़ीं—

प्राण का दीपक बुझाकर,
सो गई कविता चिता पर,
किन्तु उसकी एक अद्भुत ज्योति जग मे जल रही है।
हृदय की जलती चिता पर—
आँसुओं का काव्य लेकर—
ढूँढती गति एक जिन्दा लाश जग मे चल रही है।

अनुभूति की कोई सीमा नहीं होती, ना ही कवि अपनी सम्पूर्ण अनुभूति को शब्दो में बाँध सकता है। अनुभूतियों की स्थितियाँ होती हैं। एक अनुभूति इतनी प्रत्यक्ष होती है कि शब्दो में स्पष्ट खडी दिखाई देती है। एक अनुभूति अपने दर्शन प्रकृति की छाया में देती है। एक अनुभूति दृश्यलोक के स्पन्दनो मे मूर्त होकर झलकती है और एक अनुभूति वह होती है जिसका कोई धरातल नहीं होता। कवि अपनी उस अनुभूति को शब्दों मे कहता है, पर भाषा के दर्पण में वह अनुभूति प्रत्यक्ष नही होती, जाली के अवगुण्ठन मे झलकती हुई दिखाई देती है। कवि अनुभव करता है पर काव्य की भाषा में अर्थ नही कर पाता। काव्य प्रेमी कविता में वह अतल अनुभूति अनुभव करते हैं, पर अर्थ स्पष्ट नही कर पाते। कविता की यह स्थिति अर्थकार के पाण्डित्य की परिधि नहीं होती। इस रस का आनन्द वही अधिक ले पाता है जो

हृदय का अनुभवी हो। उसके लिये यह कविता अर्थहीन है, जो वैज्ञानिक बनकर अर्थ टटोलना चाहे। कविता की भाषा मे यह अनुभूति हृदय के सत्य एवं विस्तार से निकलती है। इस अनुभूति का प्रवाह कभी धीमा नही पडता। यह अनुभूति प्रत्येक हृदय को द्रवित करती हुई तैरती है। अनुभूति की इस स्थिति से ही गीति काव्य उदित होता है। यह अनुभूति इतनी पूर्ण होती है कि चार छः पंक्तियो मे भाव पूर्ण हो जाता है। असीमित अनुभूति से उपजे गीति काव्य मे हृदय अपनी पूर्णता लिये हुए होता है। यही अंग्रेजी मे 'लीरिक' है, और हिन्दी मे गीत। गीत मे गति यति और अमरता होती है। इस को हम गागर मे सागर कह सकते है। गीत मे छः या आठ पंक्तियों मे भाव पूर्ण होने पर यदि कवि एक भी शब्द और लिखना चाहेगा तो वह चाँद में कालिमा की तरह दिखाई देगा गुलाब मे काँटे की तरह खटकेगा। अनुभूति की इस स्थिति मे कभी कभी एक दो पंक्ति मे ही भाव पूर्ण हो जाता है और यह पूर्णता ही कवि की छवि है। गीति काव्य ही अनुभूति का उज्ज्वल काव्य है। यह काव्य समय की शिला पर मिटता नहीं। गीत की गति हर हृदय की गति होती है। अतल लहराती हुई पीडा की यह अनुभूति गीत की जान होती है। गहरी अनुभूति के गीत कवि अतृप्ति की लेखनी से लिखता है। जैसे—

निकट मैं जितना हुआ उतनी बढ़ी दूरी।
साध रोती है अधूरी, साधना पूरी॥

ओस की वर्षा लिये पत्थर डगर भर बाँध,
चांद छूने को उड़ा मैं प्यार के पर बाँध,
हाय! चन्दा छिप गया जब चांद तक पहुँचा,
प्यास बदली बन गई तब चाँद तक पहुँचा,

पत्थर नही पिंघले, हुई आराधना पूरी।
निकट मैं जितना हुआ उतनी बढ़ी दूरी॥

इस प्रकार के गीतों मे यदि आप पूर्ति के आगे कुछ बढ़ाना चाहे तो वह चुभेगा।

इसी प्रकार कृष्ण चन्द्र जी 'चन्द्र' ने एक दिन मुझे सुनाया था—

'लो कट गया आज का भी दिन अर्थहीन मेरे जीवन का।'

यहाँ इस एक पंक्ति के आगे कुछ लिखने की गुञ्जाइश नहीं रहती। इसी प्रकार एक स्थान पर मैंने लिखा है—

वह न निकलता है आँखों से आँसू निकल रहे हैं।

× × × × ×

हाथ में आँसू उठाये, चाह जब मचली शरण की।

इस प्रकार शून्य में निराशा के आँसू बहाते बहाते अनुभूति अति सूक्ष्म होती हुई निराकार हो जाती है। निराशा का यह निराकार स्वरूप ही प्रेम की अथाह स्थिति से काव्य में रहस्यवाद का स्वरूप ले लेता है। अनुभूति का अमृत प्रकृति की प्यालियों में तैरता है। कवि के स्वाप्नो का धुवाँ जिस अमृत में उड़ता है वही तो काव्य-कुसुमाकर का मधु है।

काव्य की आधुनिक प्रवृत्तियां

समय की चाल पर किस किस की चरण-रेखा विजयी है ? मर्त्य की मिट्टी मे किस किस की गति गर्विता है ? अतीत और वर्त्तमान के उलटते पलटते पृष्ठ क्या हैं ? प्रगति और परिवर्तन के पन्नों पर क्या नया है और क्या पुराना ? परिस्थितियो के पंख किस प्रकार समय को उडाते रहे तथा परिस्थितियाँ बदल कर समय को किस रूप में उडा रही है ?

ये कुतूहल भरे प्रश्न कलम की परिक्रमा कर रहे हैं।

मनुष्य साहित्य एवं प्रकृति मे अतीत और आज की इन्ही प्रवृत्तियो को टटोलता रहता है। प्राणी अतीत को इतिहास तथा भूत काल के स्मृति-चिह्नो मे देखता है और अपने समय को अपनी आँखों से। वह आज को प्रत्यक्ष देख कर भविष्य के लिये साकार करता है, तथा भविष्यत् की कल्पना कर सुनहरी चित्र देखता हुआ तूलिका चलाता है।

समय आकर चला जाता है पर तात्कालिक काव्य एवं इतिहास यही रहता है। प्रत्येक पल अपने जीवन की एक अद्भुत कहानी रखता है। यह कहानी अतीत की स्मृतियों में प्रत्यक्ष लिखी रहती है। सृष्टि के आदि और अन्त का प्रत्यक्ष पता कल्पना ही सा बना हुआ है। इतिहास मे कुछ स्पष्ट नही होता। साहित्य एवं तत्वों के आधार पर अनुमान लगाते है।

साहित्य शब्द में संसार व्याप्त है। तीन गुणो से दर्शनीय प्रकृति आज तक विस्तार एवं रहस्य बनी हुई है। परिवर्त्तन की बात पढते और सुनते आ रहे है। सब कहते हैं कि संसार परिवर्त्तनशील है। पर मूल रूप मे देखा जाये तो कुछ भी नही बदलता। दिन और रात उसी प्रकार हैं। सूर्य और चन्द्र वही हैं। पेडो तथा ऋतुओ के क्रम नही बदले। आकाश और पृथ्वी उसी प्रकार दिखाई देती है। प्राचीन के ये पृष्ठ न

जाने कितने बूढे होते हुए भी नितान्त नये हैं। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियो मे कोई परिवर्त्तन नहीं देखते। सब जिह्वा से स्वाद चखते है, आँखो से देखते हैं, कानो से सुनते हैं। अदृश्य रूप से बुद्धि मन आदि इन्द्रियाँ सब उसी प्रकार हैं। प्रेम, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, विस्मय आदि की भावनायें सब में स्वाभाविक रीति से हैं।

साहित्य भावनाओ का कोष है। भावनायें भिन्न भिन्न वायुमण्डल एवं प्रकृति मे उदित होती हैं। साहित्यकार की लेखनी भावो को भाषा के शीशे मे उतारती है। पूर्व कथनानुसार भावो की स्वाभाविक स्थिति मे कोई परिवर्त्तन नही होता। दुःख और सुख की अनुभूति आज या कल की वस्तु नही। आशा और निराशा किसी कलाकार की नयी कहानी नही। छाया और रहस्य कवि की कोई अद्भुत कल्पना नही। स्वभाव की अभिव्यक्ति ही तो कला है। प्रकृति के स्पन्दन कवि सदैव से चित्रित करता रहा है और करता रहेगा।

समय एवं परिस्थितियो के अनुसार भी साहित्य का सृजन होता है। युग के प्रवाह को साहित्यकार देखता है। साहित्यकार की दिशा प्रवाह के अनुकूल और प्रतिकूल स्थिर रहती है। वह धार को जिधर चाहे ले जाने मे समर्थ होता है। युग पुरुष के विचारो का प्रकाशन कवि की कला ही करती है।

कहने का अर्थ यह है कि युग की वाणी भी साहित्य ही है। समय का इतिहास काव्य मे मुखरित रहता है। जहाँ काव्य स्वभाव का स्वरूप है वहाँ समय का चित्र तथा युगपरिवर्तक भी है। साहित्य में जो प्रवृत्तियाँ होती हैं वे समय प्राणी एवं प्रकृति की स्थितियाँ होती हैं। कवि जो कुछ कहता है, वह प्रकृति कहती है। काव्य की वाणी ब्रह्माण्ड में भावजगत की मूर्ति होती है। यह भाव प्रतिमा अदृश्य की भासमान प्रतिमा है।

एक समय था जब काव्य में दार्शनिक वेद मन्त्रो का उच्चारण हो रहा था। एक समय आया जब कालिदास की प्रकृतिमयी कल्पना ने काव्यामृत दिया। समय ने संस्कृत भाषा में अमर कवि उतारे, जिनकी रसना ने सदैव नया और जवान रहने वाला रसात्मक काव्य रचा। समय

ने अपभ्रंश और वीर काव्य के पन्ने पलटे। भक्ति तथा प्रेम मार्गी चेतना जाग उठी। राम और कृष्ण भक्ति की वीणा ने सूर्य और चन्द्रमा का स्थान ले लिया। तुलसी, सूर तथा रसखान की रसना से हिन्दी साहित्य जगमगाने लगा। चमत्कार, चेतना, शक्ति, शील और सौन्दर्य मुखर हुए। सच्चे उपासक और उपास्य के अमृतमय दर्शनों से समस्त लोक और सब काल कृतार्थ हो गये। मुस्लिम आक्रमणों से 'भूषण' का शंख बोला। रीति काल ने करवट ली। बिहारी, पद्माकर और मतिराम की मुरली ने मन्त्रमुग्ध किया। 'देव' ने दृश्य दिखाये। काव्य-कुसुमाकर तरह तरह के फूलों से महकने लगा।

'भारतेन्दु काल' में हिन्दी काव्य का स्वर सुनाई दिया। भारतेन्दु मण्डल की दुन्दुभी बोली। नाथूराम 'शंकर' आदि अद्भुत कवियो की उक्तियाँ उदित हुईं। रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने समालोचना की लेखनी उठा अपने समय तक के हिन्दी साहित्य को अमर पद पर आसीन किया।

आधुनिक युग का नया यौवन आया। विकास विकास की ध्वनि गूंजन लगी। विज्ञान ने पर फैलाये। युद्ध के नगाडे बज उठे। पराधीनता की बेडियों की तडप निकली। जनता की ध्वनि गूंजी। साम्राज्यवाद का अंकुश ढीला पडने लगा।

बापू के डगमगाते हुए पग बढ़े। स्वतन्त्रता की आवाज़ ब्रह्माण्ड मे गूंजने लगी। अहिंसा की मधुर ललकार से धरा का पृष्ठ बदलता हुआ खुला। बन्दीगृहो से सींकचों, हथकडियो और बेडियो की झनकार लेकर कवि गा उठा —

तन पिंजरे मे झनझन क्रीड़ा, पीड़ा रानी मैं राजा।
मन की भस्सी मन मसान मे, जा जलती मृग तृष्णा जा।
काला कम्बल, टूला तसला, तेरी और कहानी क्या?
कच्ची पक्की सात रोटियाँ, जीना और जवानी क्या?

तेरा कैसा मेला कैदी ! होली ईद दिवाली क्या ?
काल कोठरी, काला शासन, काली रात, उजाली क्या ?

× × × ×

पैरों मे बज रही बेड़ियाँ, पहरे पर जल्लाद खड़े ।

× × × ×

अब साथी मकड़ी के जाले या अतीत के स्वप्न–सुमन ।

साथ ही माखन लाल चतुर्वेदी के हृदय से निकला—

क्या गाती हो ? क्यों रह रह जाती हो ?
कोकिल बोलो तो !

ऊंची काली दीवारों के घेरे मे,
डाकू चोर बटमारों के डेरे मे,
जीने को देते नहीं पेट भर खाना ।
मरने भी देते नहीं, तड़प रह जाना ।
जीवन पर अब दिन रात कड़ा पहरा है ।
शासन है या तम का प्रभात गहरा है ।

हिमकर निराश कर चला रात भी काली ।
इस समय कालिमामयी जगी क्यों आली !

इस प्रकार जेल–जीवन की अनेकों अनुभूतियाँ हृदय के चित्रो में व्यक्त हुई है । देशाभिमान की भावना एवं हृदय की पीडा प्रकृति की कम्पनो मे स्वभाव को प्रतिध्वनित करती हुई साकार है । गाँधी कालीन परिवर्तन काल मे कवि ने पल पल इतिहास के पृष्ठ बदलते हुए देखे । वह उस इतिहास का एक पात्र रह कर अनुभूति करता हुआ गाने लगा । उसकी आँखो ने देखा, हृदय ने अनुभव किया । हिंसा तथा पारतन्त्र्य की रस्सी मे बँधा हुआ वह छटपटाने लगा । उसने तडप कर गीत छेडा । गीत की तान मे प्रकृति के समस्त तार झंकृत हो उठे ।

आन्दोलन की आग दहकी। अहिंसा और हिंसा का संग्राम छिड़ा। कवियों के कण्ठ से अमृत बरसाते हुए जीवन निर्झर फूटे। आगे आगे कवियों के शब्द और पीछे बलिदान के पथ पर देशभक्तों की टोलियाँ निकल पड़ी। काव्य की ललकार समय का निर्माण करती हुई चली। आन्दोलन के हर डग के साथ कविता हुंकारी। राष्ट्रीय काव्य की देशभक्ति भरी रचनायें किसी भंगुर आवेश के वशीभूत हो कर नही हुईं। मातृभूमि के प्रेम से भरी राष्ट्रीय रचनायें अन्तर की आग, आँखों के आँसू और प्रेरणाओं से हुईं। कवि अपने हृदय वाणी और पैरों मे बेडियो का अनुभव कर तडप उठा। उसके हृदय से राष्ट्रोत्थान के गीत फूट पडे। उसने धर्म और मजहब के मँझधार मे संगम बन कर पतवार सँभाली। वह उठते हुए तूफानों के सामने छाती खोलकर गाने लगा। उसकी ललकार में परिवर्तन था। वह करुणा, सौन्दर्य ओज और स्नेह का अमृत बरसाने लगा।

बापू किसी इकाई से बँधे हुए नहीं थे। उनका परिवार सारा संसार था। भारतवर्ष मे एक समय से साम्प्रदायिकता की अग्नि जलती आ रही थी। बापू ने वह आग बुझाने के लिये राष्ट्रीयता की महान भावनायें जन जन में भरीं। कवि भी सच्ची राष्ट्रीय भावनाओं द्वारा मानवता की विकासवादी वाणी में गाने लगा। उसका स्वर समष्टि का स्वर बन कर गूंज उठा। मस्तिष्क और हृदय का सामंजस्य देशभक्ति के तारों से जुड गया।

देशभक्ति का स्वर पारतन्त्र्य काल की पीडा से फूट कर वह निकला। हिमालय का यह स्रोत भारत भूमि को सींचता हुआ सागर की उत्ताल तरंगों मे हिलोरें लेने लगा।

इतिहास के हर बदलते हुए पृष्ठ पर कवि के भावों ने आकार लिया। कविता राष्ट्रभक्ति की भावना में जीवन और जवानी बन गई। "तीर्थ के पर्व सी, बलिदान वेला में, सर रख हथेली पर, झण्डे तिरंगे ले, बढ़ चले निहत्थे जय जय के सुनाते घोष, चल पड़ा दमन चक्र अन्धी तलवार ले" आदिक अनुभूतियाँ हुंकार उठी।

इस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ अधिकांश गाँधीवादी रही। /

बापू की चेतना मे अद्‌भुत चमत्कार था। कोई ऐसा क्षेत्र नही जिसे उनके चरणो ने चेतना नही दी। गाँधीवादी स्वर लहरी से साहित्य मे समष्टिवादी चेतना चमत्कृत हुई, अन्तर्राष्ट्रीय स्वर मुखर हुए। प्रकृति एवं जीवन के सत्य सिद्धान्त बापू की भाषा मे व्यक्त हो मानव भाषा में आये।

राष्ट्रीय चेतना का यह युग गाँधी वाणी मे ध्वनित है। पद्य साहित्य ही नही, गद्य साहित्य की आधुनिक धारा भी गाँधीवादी ही है। इस युग मे काव्य की प्रेरणा बहुधा बापू की गति विधि ही है। अतः "शुद्ध राष्ट्रीय एवं गांधीवादी प्रवृत्ति आधुनिक काव्य की विशेष धारा है।" बापू के बलिदान के बाद तो बापू पर जितना साहित्य लिखा गया है तथा लिखा जा रहा है उतना शायद ही किसी अन्य विषय पर लिखा गया हो। देश और विदेशो में सन्त वाणी साहित्य का आकार लेकर तपते हुए सूर्य के प्रकाश के सदृश सर्वत्र व्यापक होती जा रही है।

आज हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे संघर्ष देखते है। इस युग के इतिहास की बदलती हुई घटनायें, नये साहित्य की पृष्ठभूमियाँ प्रतीत ही नही होती, प्रत्यक्ष है। क्रान्ति काल मे कवियो ने प्रत्येक क्षेत्र मे आत्मैक्य स्थापित किया। इस युग में सौदामिनी सी क्रान्ति कण कण में नयी ऋतु लेकर आई। क्रान्ति की कम्पनो ने विधाता की हर सृष्टि को विलोडित कर तक्र पर नवनीत तैराया। क्रान्ति क्रान्ति के घोषो से धरा पर मेघो की वर्षा हुई। राष्ट्र की चेतना साकार होकर सजीव करती हुई गा उठी।

चेतना के इस काल मे श्रमिको के श्रमकण भी कवि की आँखो से बरसे बिना न रह सके। दलित वर्गों का दाह कवियो की आह बन कर काव्य में बोल उठा। मज़दूर, भिक्षुक, ताँगे ठेले वाले, क्लर्क, कृषक आदि पीडित शोषितो की ध्वनि काव्य मे प्रतिध्वनित होने लगी। त्यक्त तथा पददलित हृदयो की भाषा कवियो की भावुकता बनी। सड़को पर कूडे के ढेरो के सदृश पडे हुए धरती के सोने के दाने काव्य मे दीपक ले कर अर्चना के मोती बरसाते हुए दिखाई देने लगे। धरती का देवत्व गा उठाः—

ये जीवित हैं या जीवन्मृत।
बाम्हन ठाकुर लाला कहार,
कुर्मी अहीर बारी कुम्हार,
नाई कोरी पासी चमार।
शोषित किसान या ज़मीदार॥
× × × × ×
ये मानव नहीं जीव शापित।
चेतना विहीन आत्मा विस्मृत॥

——सुमित्रानन्दन 'पन्त'

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता—
पेट पीठ दोनों मिल कर हैं एक।
चल रहा लकुटिया टेक—

'—निराला'

अधरों में आशा की गुन गुन।
रज में टप टप गिरते श्रमकण—
चलता भावी हरियाली का—
नयनों मे लेकर स्वप्न सघन।
अविराम कृषक हल का सहचर।
हल जब चलता है धरती पर॥

—जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'

जब न राम टस से मस होते,
नहीं बरसती तुम पर रोटी,
सुरवा बोटी—
तब तुम अपना भाग्य कोसते,
मन मसोसते,
कहते यही लिखा था, यही बदा था,
"ह्वै है वही जो राम रचि राखा"
× × ×

तेरे पैसे या दो पैसे—
किस मसरफ के तुम को होते,
इसीलिये यह अपनी वाणी—
तुम्हे भेजता हूँ चन्दे मे,
सम्भव है कुछ स हस बल दे।

× × ×

निकल पडो तुम सहसा कह कर—
अपनी रोटी, अपना राज।

—बच्चन

ऊँचे महल खडे है, नीचे सडक किनारे श्रमिक सो रहे।
उधर नाच है लालपरी का, रोटी को मजदूर रो रहे॥

× × × × ×

कौन चीथडों में लिपटी यह— बता रही दुनिया का परिचय।

× × × ×

शाम हो रही, कृषक जा रहा, या जीवन की यही शाम है।

× × × ×

इसका बहता हुआ पसीना दुनिया का धन बन जाता है।

× × × ×

चलो ग्राम की ओर चलें हम, ग्रामो के भगवान बुलाते।
इसी बाट मे पतझड आता, हरे हरे पत्ते झड जाते॥

× × × ×

श्रम को क्या असाध्य है जग मे, मिट्टी मे सोना निकाल ले।
पानी पर पत्थर तैरादे, उँगली पर हिमगिरि उछाल ले।

(—जननायक)

काव्य की यही आत्मा आधुनिक काव्य मे प्रगतिवाद की धारा है। प्रगतिवाद की प्रवृत्ति हिन्दी में नयी शैली तथा उपेक्षित पात्रों की भावाभिव्यक्ति है। ऐसा भी कहा जाता है कि यह प्रवृत्ति हिन्दी काव्य मे पश्चिम मे आई है। मुझे दया आती है जब मै यह पढता और सुनता हूं कि हिन्दी

साहित्य मे सब कुछ अंग्रेज़ी और बंगला से ही आया है। आधुनिक मनचले लेखक बडे अभिमान से अपनी विद्वत्ता प्रकट करते हुए कहते है कि हिन्दी साहित्य इस प्रकार निर्धन है, इस प्रकार अबोध बालक है। किसी को भी यह न भूलना चाहिये कि हिन्दी काव्य दान लेनेवाला नौता खाऊ ब्राह्मण नहीं है। वह और उसके पूर्वज विद्यादान देनेवाले तपस्वी ब्राह्मण हैं। हिन्दी काव्य की आधार शिला मौलिक है। मेरे विचार से तो जो भी कवि लिखता है वह अपनी मौलिक अनुभूति के अनुसार लिखता है। हाँ, यह तो कहा जा सकता है कि आज कवियो की नहीं, नवकालो की बाढ़ सी आ रही है। न भाव हे न अपनी शैली और बजा रहे हैं कविता का ढोल। पर जो नयी नयी प्रवृत्तियां आज हम काव्य मे देख रहे है, वे मौलिक अनुभूतियों के आधार पर हैं। भावनायें प्रत्येक के हृदय मे होती हैं जो अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर कवि की वाणी मे जाग उठती हैं। प्रगतिवाद भी दलितों की तडप के श्वासों की कविता ही का नाम है। पर यह मैं नहीं समझा कि वादों के वितण्डावाद में आज किसी भी शब्द के साथ 'वाद' जोडा और नया विवाद खड़ा हो गया। वास्तव मे 'वाद' किसी बहुत व्यापक विचार धारा का प्रतीक है। पर आज तो साहित्य मे अनेको वाद चल पडे हैं। राजनीति के वादो की तरह साहित्य मे वादों के बरसाती मेंढक से फुदकने दिखाई देते हैं। आशावाद, निराशावाद, छायावाद, रहस्यवाद, नारीवाद, हालावाद, बालावाद, हृदयवाद आदि न जाने कितने वाद विवाद सुनाई देते हैं, पर मैं काव्य के हर भाव को एक नया वाद कहने के लिये तैयार नहीं। जो स्थायी भाव स्वभाव मे हैं वे रस काव्य में समयानुसार होते रहे हैं और होते रहेगे। आशा और निराशा जीवन और प्रकृति मे है, संयोग वियोग प्रकृति के नियम मे हैं। स्वाभाविक स्थायी भाव ही विभाव अनुभाव और संचारीभाव से युक्त हो करुण शृंगार आदि रसों के नाम से कथित होने लगते हैं। बस इतना कहा जा सकता है कि आज के युग में दलितों के प्रति कवि के हृदय में सहानुभूति जागी, और करुणा की यह अभिव्यक्ति ही प्रगति वाद के नाम से रूढी होती जा रही है। पर यह भी प्रत्यक्ष है कि प्रगति किसी भी क्षेत्र में हो सकती है, किसी भी रस में हो सकती है। जैसे किसी

काल मे वीर रस की प्रधानता रही, किसी मे शृंगार की, किसी मे भक्ति और वैराग्य की, किसी मे हिन्दू मुस्लिम एकता और राष्ट्रीयता की। और आज भी मैं देखता हूँ की जिन भावनाओं मे प्रगतिवाद की परिभाषा होती है, वे भावनायें एक लहर की तरह आईं और अब अतीत की स्मृति सी दिखाई देती हैं। आज सारी भावनाओ का केन्द्र बापू का कोष है। बापू की जन-वाणी ही काव्य मे प्रतिध्वनित है। जैसे—

कीच मे पैर, तन नंगा, गगन से गिर रहा पानी।
पसीना देख माथे पर, श्याम घन से वहा पानी॥
किसी के स्वेद-कण गिर कर, धरा पर बन गये मोती।
उसी को देख बापू की मृदुल सी भावना रोती॥

× × × × ×

किसी को दुःख मे देखा कि तन की तान दी छाया।

× × × × ×

फूस की झोंपड़ी मे सिन्धु का मानस उमड़ता है।

और वास्तव मे बापू की वाणी मे है भी क्या नहीं ? वह तो एक अद्भुत कोष है। उस रहस्यपूर्ण महामानव मे सब रसों के निर्भर हैं। वह तो वह नग है जिससे निकलने वाली धाराओ की सीमा नही।

प्रगतिवाद की प्रवृत्ति भी बापू के काव्य की एक धारा है। पर यह कल कल करती गंगा सी नहीं, हवा की बदलती हुई गति सी है। यह अवश्य है कि आज प्रगतिवाद की बाँसुरी का स्वर आधुनिक प्रवृत्तियो मे सुरीला है। प्रगतिवाद का बोलबाला दिखाई देता है। काव्य मे श्रमवर्ग के स्वर गूंज उठे हैं। मूक हृदयो के आँसू कवियो के मोती बन कर बरसने लगे हैं। पाले की ठिर मे सडक के किनारे पडे भूखे मज़दूर की करुणा आज काव्य मे व्यक्त है। और यह अभिव्यक्ति है साम्यवादी विचार धारा के फल स्वरूप, तथा इस साम्यवाद का स्वरूप बापू का सच्चा सम है।

प्रगतिवाद की प्रवृत्ति मे कहो या इससे पृथक, काव्य मे हालावाद की भी एक लहर आई। पीने और पिलाने की आवाज़ भिन्न भिन्न मयखानों में

मचलने लगी। प्यालो और साकीबालाओ की रिमझिम झंकृत हुई। हाला के साथ ही साथ बाला के भी दर्शन हुए। यौवन की लहर पर कविता भावमयी होने लगी और हाला उछल कर कह उठी—

साकी! जब थी पास तुम्हारे इतनी थोड़ी सी हाला!
क्यों पीने की अभिलाषा से, विश्व किया सब मतवाला॥
हम पिस पिस कर मरते है तुम छिप छिप कर मुस्काते हो।
हाय! हमारी पीड़ा से ही क्रीड़ा करती मधुशाला॥

× × × ×

दिन को होली, रात दिवाली, रोज मनाती मधुशाला॥

—बच्चन

नश्वर प्रेम की वासना भरी भंगुर भावनाओ के गीत भी छिडे। सस्ती भावुकता की स्वर लहरी ने स्वप्न दिखाये। जैसे जैसे एक जाति का सम्पर्क दूसरी जाति मे हुआ वैसे ही वैसे भाव विनिमय भी होने लगा। काव्य प्रवृत्तियों के साथ साथ शैलियाँ भी नयी नयी आई। कविता मे लोच लचक और मन मे चुभती हुई उक्तियाँ सुनाई पडी। हृदय पर सीधा प्रभाव डालने वाली चुभती हुई गीत प्रणाली महकी। रुबाइयाँ और मुक्तक छन्द आदि हिन्दी काव्य में झनकारने लगे। पर काव्य की नयी और पुरानी शैलियों मे जो भावनाये व्यक्त हुई वे शोषितो की आहे, आँसुओ की कहानियाँ, रूप की मुस्कानें, आशा और निराशा की तस्वीरे आदि ही हैं। अधरों के अमृत मे कवियों की जवानी ललकारती हुई प्रेरणा के पंखों पर खडी है।

आज के कवि को हम प्रेम की प्यास लिये तैरते देखते हैं। उसकी आँखो मे आँसू, हृदय मे आग और हाथ मे कलम है। वह विधाता के आकार को लेखनी के लालित्य में देखने को उत्सुक दीखता है। उसकी प्रवृत्ति प्रेम की अनुभूति में मचलती चल रही है। अर्थात् आधुनिक प्रवृत्ति की विशेष बात यह है कि हृदय की अनुभूति शेष प्रकृति मे दर्शन देती है, जिसे हम छायावाद कहते हैं। यह छायावादी प्रवृत्ति आधुनिक काव्य की मुख्य प्रवृत्ति है।

ससीम अनुभूति असीम छवि मे झिलमिलाती हुई गाती है, और यही प्रवृत्ति छायावादी है। यह छाया प्राय: प्रत्येक कवि के हृदय से व्यक्त हुई है। जैसे—

फटे हुए थे नील वसन क्या ओ यौवन की मतवाली!
देख, अकिंचन जगत लूटता तेरी निधि भोली भाली॥

—जयशंकर 'प्रसाद'

इस सोते संसार बीच सज कर जग कर रजनी वाले!
कहाँ बेचने ले जाती है गजरे ये तारों वाले?

—रामकुमार वर्मा

ग्रीष्म का मार्तंड चाहे हो तपाता भूमितल को।
दिन प्रथम आसाढ का मैं "मेघचर" द्वारा बुलाता॥

—बच्चन

तारकमय नव-वेणी बन्धन,
शीश भूलकर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछादे चितवन से अपनी,
आ बसन्त रजनी!

(—नीरजा)

कौन कौन तुम परहित-वसना, म्लान मना भूपतिता सी।
वात-हता विच्छिन्न-लता सी, रति-श्रान्ता व्रज-वनिता सी॥
नियति-वंचिता, आश्रय-रहिता, जर्जरिता पद-दलिता सी।

—सुमित्रानन्दन 'पन्त'

किस अतीत का दुर्जय जीवन अपनी अलकों मे सुकुमार।
कनक कुसुम सा गूथा तूने यमुने! किसका रूप अपार॥

—निराला

मूक तारे जल रहे हैं, गगन गंगा के किनारे।
दीप बुझ कर कह रहे हैं, टूटते रहते सितारे॥

फूल जग से कह रहे है, अर्चना बलिदान क्या है ?
कह रही यात्रा पथिक से, पगों की पहिचान क्या है ?

× × × ×

घास की गठरी धरा पर धर खड़ी वह कौन रोती !
कौन पतझड़ सी प्रलय में आँसुओं का बोझ ढोती !!

× × ×

किसकी पग-धूलि टटोल रहे तरुओ ! झुक के किस आशा से ?

× ×

हवा रुक गई चलते चलते, पकड़ लिया बापू का आँचल ।
विधवा सी मासूम खड़ी थी, चुप थी पात पात की पायल ॥

(—जननायक)

आज ध्वनि व्यंजक भावना शून्य काव्य अत्यानुप्रास की परिभाषा तक ही रह गया है। समय नष्ट करने वाली कहानियों का आज काव्य मे आदर नही। वैसे तो थोथे काव्य की भी आज बाढ़ सी आ रही है पर युग की वास्तविकता आदर्श और उदाहरण उन्हे नहीं कह सकते। वास्तविकता तथा आदर्श आधुनिक काव्य की उन प्रवृत्तियों मे है जिनको कोई सन्ध्या ढला नही सकती, जो कभी पुरानी नहीं हो सकतीं, जो भावनायें स्वभाव एवं प्रकृति की प्रतीक है, जिन कविताओं मे हृदय की भाषा ने प्रकृति का रूप लिया है।

हम देखते हैं कि समय के मंझधार को पार कर यह प्रवृत्ति आज के काव्य की मुख्य प्रवृत्ति है। हृदय-धारा पर गीत लिखने की सुन्दर प्रवृत्ति ने काव्य में अमर बेलि बोई है। आज की कविता हृदय की तड़प लेकर निकलती है। कविता तो है ही वह जो हृदय से निकले और हृदय से मिल जाये। जो कविता शेष जगत पर छाप नहीं छोडती वह वास्तव मे कविता ही नहीं। आज जिन्हे हम कविता कह सकते है वे वे ही हैं जो अनुभूति से निकली है। भाव यह है कि हृदय वाद भी आधुनिक काव्य की एक प्रवृत्ति है। जैसे—

चिता जलती है, किसी के श्वास जलते हैं।

× × ×

जीवन तो सीमित होता है, प्यार नहीं है सीमित।

× × ×

तट बन कर मँझधार बन गई, नीर बनी आँखों में आकर।

—'मित्र

आज मुझ से दूर दुनिया।

× ×

बात पिछली भूल जाओ,
दूसरी नगरी बसाओ,
प्रेमियों के प्रति रही है हाय! कितनी क्रूर दुनिया।

—बच्चन

नयी बात जो आज के काव्य में मिलती है वह है प्रयोगो की। आधुनिक काव्य मे नये नये प्रयोग हुए हैं। नये छन्द, नयी शैलियाँ नयी अभिव्यक्ति, नयी ध्वनियाँ, नये रूप, नयी दिशाये, नये स्वर, नये स्पन्दन आधुनिक काव्य में क्रीडा करते है। पर मूल में प्राचीन ही नया है।

नये प्रयोग अधिकांश प्रगतिवादी रचनाओ मे हुए हैं। नये छन्द, नयी, शैलियाँ एवं नयी ध्वनियाँ प्रगतिवादी काव्य में जवानी की तरह हैं। नये स्वर, नये स्पन्दन एवं नयी शैली अनुभूति गीतों मे ही उज्ज्वल है। गीति काव्य की प्रवृत्ति जितनी आज है उतनी कभी नही हुई। 'लीरिक' का लालित्य आधुनिक काव्य मे ही किशोर है। नये रूप तो आधुनिक चेतना के आकार हैं, और क्योंकि यह चेतना का युग है अतः आधुनिक काव्य मे भी चमत्कार हुआ है।

काव्य का चमत्कार आज अनुप्रास और अलंकारों की लडियो मे नही। आज के काव्य की विशेषता यह है कि वह मनोवैज्ञानिक है। उसमे भावनाये हैं, रसात्मकता है, उक्तियो की संगति बैठती है, बातो मे वैचित्र्य है। आधुनिक कविता भावजगत में ही रहती है। उसमे विज्ञान जैसी तोड फोड नहीं होती। वह विज्ञान के धरातल से ऊपर तैरती है। वह आकाश मे उडती है पर तारों को तोडती फोडती नहीं अपितु उनके साथ हृदय मिला कर।

आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियाँ बहुत मंजी और सुधरी हुई है । वे इतिवृत्तात्मक के बोझ से लदी हुई नही दौडती । कहानी और काल की चाल ढाल आज नही है । आज की कविता मे बखेडा कम है । आज उन कविताओ का आदर नही होता जिनमे गहरी भावुकता नही, कला नहीं। आज की कविता मे शब्दों को खीच खीच कर बाँधने वाली बात स्वप्न सी है । क्योकि अपने भाषा सम्बन्धी अज्ञान का दोष हम काव्य की क्लिष्ठता कह कर नही बदल सकते । पाठको को भाषा की सीढी द्वारा काव्य के लक्ष्य तक पहुंचना चाहिये । काव्य का माध्यम भाषा की सिद्धि ही है । यह सिद्धि स्वाभाविक होती है, बनावटी नही । वास्तव मे आज का काव्य सूझबूझ और अनुभूति का है ।

अनुभूति क गीति काव्यो मे अधिकांश भावनायें छायावादी हैं । छायावाद आज के काव्य की गम्भीर प्रवृत्ति है । आज के काव्य मे कवि प्रकृति मे भावनाओं के मोती पिरोता है । कवि के हृदय की छाया हर अणु पर मँडराती है । आधुनिक काव्य की छायावादी धारा की बाँसुरी सब धाराओं से मधुर एवं गतिशील है । छायावादी काव्य की गहराई अथाह होती है । समय की गति पर वह नया ही रहता है । उसकी सुगन्ध और सौन्दर्य आनन्दमय है । यही छायावादी प्रवृत्ति अनुभूतियो की असीमित गहराई मे पहुंच रहस्यवाद कहलाने लगती है । यह रहस्यवाद भी आधुनिक काव्य का एक स्वरूप है । पर छायावाद और रहस्यवाद का मूलाधार प्राकृतिक है ।

काव्य की आधुनिक प्रवृत्तिओ, प्रयोगो और सिद्धान्तो का पूरा आनन्द तो आधुनिक काव्य धाराओ के संगम मे अवगाहन करने से ही मिलेगा । त्रिवेणी के तीर पर ही यह तीर्थ है । पर कुछ शब्दो मे कहा जा सकता है कि आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियाँ छायावादी फ़ूलो पर मचलती है, प्रगतिवादी वर्गों मे तैरती हैं, राष्ट्रवादी चेतना मे हूकारती हैं, हृदयवादी अनुभूतियाँ लेकर व्यक्त होती हैं, स्वच्छन्दता के वायुमंडल मे विचरण करती हैं, विस्तार के पंखो पर भ्रमण करती है, आशा और निराशा की लहरो पर लहरती है, मैं और तुम की परिधि मे असीम को खोजती है, प्रेम की

पॉखुडियो पर मुस्काती है, नये नये प्रयोगो पर पर फैलाती हुई दर्शनीय है, कथा साहित्य की मनोरंजक गति हैं। दो धारो के बीच संघर्ष का शंख लिये ललकार रही है, और साथ ही आज की प्रवृत्ति "जिमि स्वतन्त्र ह्वै बिगरै नारी" की उक्ति चरितार्थ करती है।

आशा और निराशा के जीवन की गति रचती और मिटाती है। कुछ रचा और कुछ छिपा। रसवाद आज अखरता है। भावो का उद्रेक जितना तीव्र है, प्रकृति का सामंजस्य जितना जागृत है, प्रगति के फूलों की जितनी बहार है, क्या रसात्मकता भी उतनी अनमोल है ? उत्तर मे कहा जा सकता है कि प्राचीन सिद्धान्तो से काव्य मे गति अवरोध आजाता है, कवि स्वतन्त्र है, यह सत्य है। पर उच्छृंखलता अच्छी नही। वह जो कुछ कहे स्थायी भाव की अनुभूति से कहे। हमारी प्रकृति रँग भर सकती हैं पर प्रकृति नहीं बदल सकती।

पुरानी प्रकृति बिल्कुल नयी है। नयी प्रकृति मे नये फूल खिले है। नये फूलो मे यथार्थ का सौन्दर्य है। सौन्दर्य मे सुरभि है। सुरभि मे आदर्श स्वतः है। आदर्श में आनन्द है, और आनन्द ही काव्य है।

———: ० :———

कल्पना और यथार्थ

उसने कल्पना की—

मानो साकार कल्पना सौन्दर्य से शृंगार कर प्रकृति के आँगन मे मोती बरसा रही है। बदली की रिमझिम के स्वर ताल पर उसका नृत्य छिड़ा। संसार की आँखें उसका चमत्कार देखने लगी।

नीलाम्बरा रजनी गगन के तारक दीपों से मानो किसी का स्वागत कर रही है। सतरंगिनी ने रूप राशि लुटाई। चाँद ने चाँदी की वर्षा की। रश्मियाँ सुनहरी छींट की साडी पहिन फुलवाडी मे अपनी छटा दिखाने लगी।

उसने दूसरी ओर देखा, सागर की गर्जती हुई लहरें वीर काव्य की सृष्टि कर रही थी। बडवाग्नि मे पीडा का इतिहास लिखती हुई जीवन की गति गर्विता थी।

उसने चाहा कि मथ कर रत्न निकाल लूँ। किन्तु झिझक कर सोचा—क्या सागर की लहरों के सामने ठहर सकेगा? हिमालय की तरह लहरो की टक्कर सीने पर सहन करने की शक्ति तुझमे है?

अब उसने धरातल पर दृष्टि डाली। झाड झंखाडो के बीच स्मित की लहरो पर मुस्काती हुई प्रकृति मे उसने प्राण देखे। सरिता के रम्य तट पर वह कल्पना की पलको पर खडा हो गया। भूत भविष्य और वर्तमान आगे आये।

कल्पना की क्रीडा मे डगमगाते हुए पैरों की ओर से मुँह फेर वह जहाँ का तहाँ चक्कर काटने लगा। कल्पना के भँवर मे तैरता हुआ वह रसातल की थाह पकडने दौडा।

पृथ्वी पर आया, रसातल में गया, अम्बर मे होड लगाई, और इस से भी आगे न जाने कहाँ कहाँ .... .

संसार यह सब मिथ्या समझता है । उसने भी मिथ्या समझा। अनुभूतियों की गहराई में उतरे बिना कल्पना एक मिट्टी के खिलौने जैसी ही है न ?

अब उसे जीवन से भिडन्त करनी पडी। कभी उलझा और कभी सुलझा । कभी उसकी आँखें गौरव मे ऊपर उठीं और कभी नीचे झुक गईं ।

हलचल की चहल पहल मे मचलता हुआ मन आशा बाँधता, बुद्धि उसका फल निकालने के लिये तत्पर होती । झाड झंखाडो के बीच उसने रुदन संगीत सुने। काँटों के बीच खिलते हुए फूलो मे उसने अपने जीवन की झलक देखी । प्रकृति के सौन्दर्य मे प्रेयसी के दर्शन किये। बडवाग्नि मे उसके हृदय की अग्नि बोली । सागर की लहरों में उसे अपने यौवन का उल्लास प्रतीत हुआ। हिमालय मे उसने अपनी स्थिरता का आभास पाया ।

रात्रि के सुन्दर वातावरण मे उसने विश्व–शान्ति का संकल्प किया। तारक दीप देख उसने स्नेह से दीपक जलाने का बीडा उठाया। मुस्कराते हुए चाँद की श्रान्त चाँदनी मे शान्ति ने वीणा बजाई । इन्द्रधनुष मे विश्व की सजधज देखी। बादलो से धरती की गोद मे मोती बिखरे। किसान मुस्कराया। किन्तु हाय ! वह मुस्कान आँसू बन कर उसकी आँखों से बरस पड़ी ।

स्नेह से उसे सत्य की अनुभूति हुई। कल्पना मे उसने सत्य का तादात्म्य पाया । पर सुन्दर उसे जीवन की निकटता के अतिरिक्त कहीं नही दीखा। तो क्या यथार्थ भी कल्पना ही है ?

कल्पना मे यथार्थ और यथार्थ मे कल्पना–यही जीवन का चिर सत्य है। कल्पना जहाँ तक पहुँचती है वह यथार्थ से परे नहीं। कल्पना की परिधि वहाँ तक है जहाँ तक बुद्धि में यथार्थ और यथार्थ में कल्पना का सत्य है ।

कवि कल्पना के चित्र खींचता है, उनमे रंग भरता है। हृदय की

तूलिका से दृश्य लोक में भीग भीग वह चित्रों को आकर्षित बनाता है। किन्तु वे चित्र बोलते नहीं, बोलते तब हैं जब अन्तर का सत्य कल्पना की स्वर लहरी में बोले।

पर कल्पना के पंख पल में टूट भी पड़ते हैं। तो फिर अस्थिर में स्थिरता कैसी? नश्वरता में सत्य के दर्शन भी कहीं कल्पना ही तो नहीं? कौन है ईश्वर? क्या है यह संसार? कल्पना के हवाई घोड़ों की दौड़ क्या वहाँ तक पहुँचती है? पर यह सृष्टि भी तो किसी इन्द्रजालिक की कल्पना ही हो सकती है! क्या माया और कल्पना में कुछ अन्तर है? यह संसार यथार्थ है या कल्पना?

यह एक उलझन है जो सुलझती नहीं। दर्शन, विज्ञान और प्रत्यक्ष की अनुभूतियाँ भी अभी तक केवल कल्पना ही कर सकी हैं। साकार और निराकार की उपासना को हम क्या कहें—आधार, अनुभूति या कल्पना? जब थक जाते हैं तो कल्पना ही कहने लगते हैं।

तो फिर साहित्य में यथार्थ सर्वांगीण है या कल्पना? लेकिन सर्वांगीणता तो सामंजस्य में होती है। पर कुछ भी हो, सर्वतोमुखी कल्पना की ऊँची उड़ान जिस साहित्य में नहीं वह फीका ही है।

जब तक कवि की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूति कल्पना के विस्तार में नहीं घूमती तब तक उसमें रसात्मकता नहीं आती। यथार्थ बिना कल्पना के नहीं निखरता। भाव भाषा और शैली चाहे कितनी भी सुन्दर हो पर कल्पना के बिना वह लाक्षणिकता से शून्य रोने और हँसने की हूँ हूँ सी रहती है, और जब अनुभूति कल्पना—काननों में झूमती हुई गाती है तो साहित्य के सुन्दर मन्दिर में निर्मल चन्द्रमणि सी कविता आरती उतारती है।

कल्पना करो कि कोई बहुत दुखी है। उसकी पीड़ा की अनुभूति द्रवीभूत हो कर हृदय से निकलना चाहती है। एक पथ तो है आँखों का—जहाँ से वह आँसू बन कर निकलती है, और दूसरा पथ है—हृदय से हृदय का। इस पथ से जब अनुभूति निकलती है तो कविता कहाती है। पर यह अनुभूति यदि कल्पना के बिना निकले तो रुदन के हूं हूं वर्णन

के अतिरिक्त और कुछ नहीं, और यदि यह कल्पना के विस्तार के साथ निकले तो अमृतमयी गंगा धारा सी कविता होगी।

जैसे कथित पीड़ित ने कहा—

तुम क्या जानो कितनी पीड़ा भरी हुई मेरे मानस में ?

तो कवि का यह कथन केवल सस्ती तुकबन्दी ही है, और जब वह अपनी वेदना की अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है—

'दृगों की बरसात में खग उड़ रहा वे पर।'

× × ×

'अन्तर्दाह लिये जीवन को सागर चला रहा है'

या महादेवी की वाणी में—

रात सी नीरव व्यथा, तम सी अगम मेरी कहानी।

तो कल्पना की ऊँची उडान से पीडा में चमत्कार आ जाता है। इस कथन में कल्पना के विस्तार की सीमा हम खोजते रह जाते हैं। इस गम्भीर अभिव्यक्ति को हम रसमयी कविता कहेंगे। कवि अपने अन्तर के दाह को अद्भुत उडान के साथ व्यक्त करता है। और जब हम कवि के मुँह से सुनते हैं—

स्नेह भरा दीपक जलता है, दाह भरी उजियाली।
अधरों तक आने से पहिले टूट चुकी है प्याली॥

तो हम अधरों के अमृत में इतने गहरे डूब जाते हैं कि निकल ही नहीं पाते। पीडा इतनी घनीभूत होकर पिघली है कि कल्पना और अनुभूति रहस्य की तरह सूक्ष्म हो गई हैं। हम जितने पास पहुँचते हैं, विस्तार उतना ही बढता जाता है।

कवि के हृदय में स्नेह लहलहा रहा है। उस स्नेह में जलने की तड़प है। वह अपने जीवन में जल रहा है। जलती हुई लौ से उजाला फैल रहा है। पर उसके हृदय में अँधेरा है। कितना दाह है उसकी उजाली में! कितनी मार्मिक है उसकी तडप! और कितने तडपते रह जाते हैं हम जब प्याली अधरों तक पहुँचने से पहिले टूट जाती है। यहाँ तो

हम गूंगे की तरह गुड़ का स्वाद चखते ही रह जाते है।

अर्थात् यदि यथार्थ की अभिव्यक्ति लाक्षणिक प्रयोग और कल्पना के विस्तार के साथ नहीं हुई है तो वह केवल सस्ती भावुकता ही कही जायेगी। सर्वतोमुखी प्रतिभा का प्रतिपादन कल्पना के कोमल कानन में ही होता है। अन्तरानुभूति काव्य की परिभाषा पर तभी पूरी उतरती है जब वह कल्पना से सजी धजी हो। व्यथा मार्मिक कल्पना के बिना कृपण रह जाती है। सरसता और सौन्दर्य से शून्य फीकी फीकी दिखाई देती है। श्रोता, पाठक एवं दर्शक को मधुकर की तरह झूमने का अवसर उसमे तभी मिलेगा जब भावना कल्पना की गति में तैरती चली जा रही हो।

यथा रामचरित मानस मे महाकवि तुलसी ने स्थल स्थल पर 'क्वचिदन्योतोऽपि' से कथानक मे अलौकिकता उपस्थित करदी है। उनके भाव तालाब के रुके हुए पानी में रुकी हुई नाव की तरह नहीं हैं अपितु गंगा के धारा प्रवाह मे तैरती हुई तरणी मे हैं। कल्पना मे कविता किशोरी सी उमंगित दीखती है, बुढ़ापे की झुकी हुई कमर सी नहीं।

काव्य में कल्पना के बिना क्रीडास्थल का अभाव रहता है। कल्पना ही काव्य की कुसुम माला है। कलाकुञ्ज में सौरभ और मकरन्द कल्पना के फूलों ही मे तो भरा रहता है। जिस प्रकार देह के बिना चेतन शून्य है, उसी प्रकार कल्पना के बिना काव्य।

साहित्य को कल्पना की ही बहुत बडी देन है। कल्पना की आधार शिला पर ही कहानी, उपन्यास और कला थिरकती है। कलाकार की इस काल्पनिक संसृति में प्रत्येक पल कल्पना के पंखों पर नाचता है। जब कोई गीतकार गाता है तो कल्पना ही साकार होकर सामने आती है। कौन ऐसा है जो प्रत्येक पल कल्पना के वातचक्र मे नहीं घूमता? क्या कल्पना को ही यथार्थ नहीं कह सकते! चित्रकार कल्पना कर जो चित्र रचता है, क्या वह यथार्थ रूप नही ले लेता? हम हृदय मे कल्पना कर जो तस्वीर बनाते हैं क्या वह कल्पना ही रहती है? यथार्थ मे देखा जाय तो यथार्थ एक विचित्र कल्पना ही है। क्या रूप के पर्यायवाची के सदृश कल्पना भी आशा की पर्यायवाची ही नहीं?

किन्तु यह भी सत्य है कि यदि कल्पना तिलस्मी उपन्यासों की तरह जादू का तमाशा एवं मदारी का खेल बनी रही तो वह भूत प्रेतों की कहानी ही रहेगी। असंगत कल्पना मे वर्णन की रोचकता भंगुर भोग के सदृश है। किसी भी सभ्य साहित्य एवं समाज मे ऐसी कल्पना का समादर नही हो सकता। इस प्रकार की रचनायें कल्पना को कलंकित करती है। कल्पना का सुहाग नोच विधवा को वेश्या के रूप मे उपस्थित करना कला नहीं। कलात्मक कल्पना वही है जो जीवन मे घुल कर रहस्यात्मक प्रकृति मे भ्रमण करती हुई साकार हो।

यथार्थ जितना गहरा होता है कल्पना उतनी निखरती है। कवि अनुभूतियो के मर्म मे जितना तैरता है उतनी ही ज्वलंत कल्पना साकार करता है। संयोग के सुनहरे समय मे वह कल्पना से स्वप्न साकार करता है। और जब दूसरे ही पल वह वज्रपात से विरह व्यथा का एक एक पल रो रो कर काटता है तो उस की कल्पना न जाने कहां कहां पहुँचती है।

बस तभी वह छाया लोक से सत्य को खोजने लगता है। प्रकृति के कण कण मे उसकी अनुभूति की अंकित चेतना कलात्मक को पुकारती है। उलझन के तारो मे कल्पना के वायुयान पर उडता हुआ वह समस्त ब्रह्माण्ड मे चक्कर लगाता है। यथार्थ को खोजने के लिये खोया खोया सा वह दार्शनिक तत्वो में झूमता है। जहाँ जा कर उस की कल्पना रुक जाती है और केवल यथार्थ रह जाता है, पर मर्त्यलोक का प्राणी तब उसे केवल कल्पना ही समझता है। यही कल्पना और यथार्थ का वह रहस्य है जो भाषा के घूंघट मे झिलमिलाता है।

काव्य की अन्तश्चेतना

कल्पना के समीरण पर सुरभि उड चली। पीडा की गूंज पर भौंरे गूंजने लगे। चेतना की चाह पर चमत्कार सा छा गया। कुसुम कलिकाओं में भावनाएं गाने लगी? भाषा की फुलवारी मे एक अद्भुत उत्सव सा दिखाई दिया।

आँखें उधर निर्निमेष हो गई। अधर उधर फडकने लगे। हृदय उसने हर लिया।

कानो में रस बरसा। चेतना में गति आई। विरह की व्यंजना हुई, प्रेम की प्यास बढी, और वेदना मचलने लगी।

वीणा की झनकार सुनते थे पर वीणा अदृश्य थी। तड़पती हुई कसक की रुनझुन सुनाई देती थी पर न जाने कौन से घूँघट मे थे! अमृत बरसता था पर मेघ ओझल थे। पीडा की ध्वनि थी पर स्वरूप किसी ने नही देखा। प्रकाश तो देखा पर दाह नहीं। सौन्दर्य तो देखा पर छूने को दौडते ही छिप गया। न जाने क्या छटपटाती सी गा उठी—

सावन मे पतझड़ इस तरु पर यह कैसी अनहोनी!
छाया छोड़ गई क्यो इस को, कहाँ गई मृगछौनी?

गाने मे रस था, पर लहरता हुआ। लहरें देखते थे पर पकडने मे नहीं आईं। अर्थ तो मिले पर शब्द नहीं। मंगल की मधुरता मिली पर हम स्वप्न ही समझे। सत्य सूंघा पर सुरभि न बता सके।

दर्शक ने द्रष्टा से पूछा—क्या कहते हैं इसे?
द्रष्टा ने कौतूहल से देखते हुए कहा—उलझन मे हैं।

कोई इसे रसात्मक काव्य कहता है। कोई शब्द और अर्थ की सुन्दरता। कोई इसे अर्थ की रमणीयता कहता है तो कोई अनुभूतियों का कोष। कोई इसे जीवन की चेतना बताता है तो कोई मरण की जीवनी। कोई इसे मिलन संगीत कहता है तो कोई विरह की व्यथा। कोई इसे सत्य कह कर पुकारता है तो कोई स्वप्न कह कर चिल्ला रहा है।

देखिये ! ये बता सकेंगे। ये कवि हैं। बहुत गहरी दृष्टि से देखते हैं ये। बडी तल्लीनता है इनमे। शून्य मे इस प्रकार देख रहे हैं मानो उस मे इन का कुछ खो गया।

दर्शक.... क्यो कवि ! क्या कहते हैं इसे।

कवि .समालोचक से पूछो या ,शास्त्रो मे देखो। जिस उलझन ने मुझे उलझा रक्खा है उस उलझन की परिभाषा क्या बताऊँ ! मैं कभी इसे स्मृतियो की बरसात कहता हूँ, और कभी हृदय के चित्र। कभी मूर्त वेदना कहता हूँ तो कभी साधना के फूल। कभी जीवन का दाह कहता हूँ तो कभी निराशा की मूक कहानी। कभी उत्साह की एक भंगुर तरंग कहता हूँ तो कभी बिजली की तडपती हुई कौंध। कभी करुणा का द्रावक मधुमास कहता हूँ तो कभी जीवन का भयंकर अभिशाप कहकर न जाने कैसा सा हो जाता हूँ।

यह नश्वरता का ऐसा अमृत है जो जीवन देता है। यह प्रेम की वह चिता है जो कभी बुझती ही नही। यह विरह की वह गंगा है जो आँखों मे निकलती हुई बहती है। यह प्रेम के प्रतिदान का वह प्याला है जो कभी रीता नही होता। यही तो विषपान का शिवम् है। यह समुद्र के जीवन की वडवाग्नि है। यह जड और चेतन की चेतना है। यह आत्मतुष्टि के लिये भटकने भावुक की भावना है। ये ही तो भावुकता के भादो भरे मेघ हैं। यह तिरस्कार की ठोकरों का समादर है। यह मृत्यु और जीवन की मनोहर कल्पना है। यही संयोग का स्वप्न और वियोग की जागृति है। यह रह रह कर उठती हुई एक हूक है। यह बढती हुई चाह और गिरती हुई दीवार है। यह लक्ष्य की अवहेलित लक्ष्मी है। यह ब्रह्माण्ड के हृदय की भाषा है। यह वह है जो मुझे जला रही है। यह वह है जिसके होने से मैं चोट को स्वाद

कहता हूँ। यही वह हास है जो वास्तव मे रुदन की रूप रेखा है। यही वह कल्पना है जो कभी पूरी नहीं होती। यही वह केसर है जो अस्थिपंजरों की तरह सूखी और मुरझाई हुई भी सुगन्ध एवम् रंग देती है।

क्या कहूँ और कहाँ तक कहूँ! यह वह रसायन है जिसमे सब कुछ है। यह अमृत है पर रचयिता के लिये विपाक्त ज्वाला। यह वह सुहागिन है जिसका शृंगार कवि करता है, जिसकी माँग मे वह अपने हृदय की राख का सिंदूर भरता है। उस सिंदूर मे उसके रक्त की लाली होती है। इस शृंगार मे वह स्वयं को भूल जाता है। इसी की सज्जा मे मैने मेघो की श्यामलता घोल दी है। ये काली अलके नही, मेघ मालाये है। इसी की आँखों मे मैने अपनी पुतलियो का सुरमा लगाया है। इसी की भौहो में मैने इन्द्र धनुप को सजाकर धरा है। इसी के बालो की माला मे बिजलियो के फूल भरे है।

किन्तु इसके केशो की लडियो मे उलझने बढती ही जा रही है। इसके अधरो पर अमृत तैरता है पर प्यास नही बुझती। इस के चिबुक पर चुम्बन की चारुता है पर मूर्च्छा भरी। इसके कपोलो पर चाँदनी क्रीड़ा करती है, पर परछाई पड़ते ही वह भाग जाती है। इसकी श्रुतियो मे संगीत की गूंज झूमती है, पर यह रीझती ही नहीं। इसकी आँखो में हलाहल की हिलोर है पर कवि के लिये आकर्षण की मृत्तिका। इसके मुँह मे मधुरिमा घुली हुई है पर यह बोलती ही नही। इसकी नासिका नयनो को बाँध लेती है पर हृदय की सुगन्ध से पसीजती नही।

इसके कंठ मे अन्तर और वहिर्जगत का सौन्दर्य मचल रहा है। इसके हृदय मे आनन्द और आधार के अनमोल आकर्षण है। इसकी नाभि मे भँवर की अथाह सीमा है। इसकी कटि फूलो के बोझ से लचकती हुई डाल सी है।

मानस की लहरों पर वह हंसिनी सी तैर रही है। हिमालय के उत्तुंग शिखर पर वह ललकार सी लहरती है। सिन्धु के वक्षस्थल पर वह वीचियाँ चीरती हुई क्षितिज को छूने दौड रही है। धरा की गोल गति पर वह समय की आवर्तिका है। और वही है जो मेरे हृदय मे दीपशिखा बन

कर जल रही है।

मै इसे कला कहूँ या कल्पना, भावना कहूँ या अनुभूति, पीड़ा कहूँ या प्यास, संयोग कहूँ या वियोग, हृदय कहूँ या आत्मा, लक्ष्य कहूँ या मंज़िल, जल कहूँ या लहरें, प्रेम कहूँ या घृणा, निराशा कहूँ या उत्साह, कोमलता कहूँ या कठोरता,-करुणा कहूँ या दैव की कृपणता ?

इस मे चाह है और आह भी। इसमे आलम्बन है और आश्रय भी। इसमे विभाव हैं और अनुभाव भी। इसमें ओज है और माधुर्य भी। इसमे प्रसाद है और लाक्षणिकता भी। इसमे अभिधा है और व्यंजना भी। इसमे सौन्दर्य है और मान भी। इसमे आत्मा है और अभिव्यक्ति भी। इसमे हृदय है और स्वर भी।

देखो ! वह गा रही है। कितनी मीठी तान है ! इस समय यहाँ दुःख नही, सुख का सरोवर है। संयोग की वीणा बज रही है। कितनी मनोहर अभिव्यंजना है ! संयोगिनी श्रृंगारिका श्रृंगार रस मे सुहाग की सिन्दूरी गा रही है।

चंचल चाव चकोर लिये अलि ! आज कहो मत चाँद न चूमा।
रात रँगी मधु घोल रहे मन पावस पाकर कौन न भूमा ?
सावन में रस पी प्रिय का छवि भूल प्रिया कब डाल न भूली ?
बात बड़ी रस की रति की अलि ! बादल पाकर कौन न भूली ?

और उधर सुनो इस टूटी हुई वीणा की झनकार। इसमे स्वर है पर आह भरा। इसमे कहानी है पर दर्द भरी। जानती हो इसे कौन बजा रही है — विप्रलम्भिका। वह आँखो मे अंकित चित्र आँखो के आगे देखने के लिये व्याकुल है।

वह न निकलता है आँखों से आँसू निकल रहे है।

तड़प है इसके हृदय मे, आग है इसके आँसुओ में, पर जो कुछ यह गा रही है निराशा है उसमे, विरह वेदना है, किन्तु चाह भरी एवं दाह भरी। यह पिघल कर जो कुछ गा रही है जग उसे कविता कहता है।

क्या नियम है नियन्ता का, वियोग भी रस ही है। यहाँ विष भी अमृत बन गया।

और सुनो, उस शोकाकुल का रुदन संगीत। करुणा से धरती पर गिर गिर कर वह कैसा रो रहा है। पर काव्य उसे अपने पंजों मे पकड करुण रस कहता है। पता नहीं फिर नीरस क्या है संसार मे! कही वही उद्‌गम तो नही जहाँ से करुणा निकलती है?

मरने पर भी लगी न जिसके माथे पर रोली।
आज चार कन्धों पर जाती यह उसकी डोली॥
कन्धों पर चढ़ कर जाती है प्रियतम की प्यारी।
कहीं नहीं हारी दुनिया पर हाय! यहाँ हारी॥

× × × × × ×

आज विधाता की निर्ममता अश्रु उठाती है।

इधर यह करुणा है, उधर उस सिन्धु की लहरो का मचलना देखो। कैसा उत्साह है उसमें! आह! उसने उत्साह से रत्न दान कर दिये। मर्यादा की परिधि मे कितनी असीम है उसकी सीमा! ये लहरें हैं या कर्मवीर की रेखायें!

कितनी गर्जना है उसके ज्वारभाट मे! मानो युद्ध क्षेत्र मे महावीर की हुंकार गर्ज रही है। आँखों मे प्रलय और हृदय मे ज्वाला लिये वह अनीति और अत्याचारो को ललकार रहा है। उसकी तडप में बिजली बसी हुई है। उसके जीवन को काटने वाली तलवार नही बनी। उसकी हुंकार से संसार डरता है। वह शत्रु की छाती पर मृत्यु की सत्यता सा अजय है। उसके हृदय का रस जब कोई प्याली मे भर कर पिलाता है तो पीने वाला उसे वीर रस कहने लगता है।

जीवन वह जो पीड़ा मे भी शान्त रहे मुस्काता जाये।
जीवन के अनमोल पलों से, खिलता और खिलाता जाये॥
जीवन और जवानी वह है, लहरों के प्रतिकूल चले जो।
मैं तो दीपक उसे कहूँगा, झंझाओं के बीच जले जो॥

और इधर यह टिमाटर सी नाक वाला कैसी अनोखी वेश भूषा मे नाच रहा है। नीचे कोट और ऊपर कुर्ता पहिने उल्टे टोप की अकड मे अलबेट खाता हुआ वह किसे नही हँसाता! यहीं तो कविता में हास्य रस का खिलौना है।

मोटी नाक टिमाटर जैसी, बड़े कान मूली के पत्ते।
ओठों की उपमा किस से दूँ, मानो थे मेमों के लत्ते॥

और इस रंगमंच की विचित्रता देखिये! उसके लाल लाल नेत्रो से अंगारे निकल रहे है। वह सात्विक और कायिक स्थिति मे क्रोध को उडेल रहा है। कैसी प्रचण्डता है इसके स्थायीत्व मे! यही तो रौद्र रस की अभिव्यंजना है। और देखो कैसी डरावनी है उसकी खूंखार आवाज! आलम्बन थर थर कांप रहा है। भय से श्रोता मृतक सा हो गया। इसी स्थिति से भयानक रस उमडता है।

दाँत निकाले, आँखे फाड़े, देखो वह इंसान आ रहा. . .

यह लो यवनिका भी उठी, और अब देखो कही चिताये सुलग रही है, और गिद्धादि शव नोच नोच कर मांस के छीछडे उठा रहे है। कही हड्डियाँ है, कहो चील आमिष खा रही है। कही वसा और रक्त मे भीगी खोपडी ठुकराई जा रही है, कही कुत्ते दाँतो से वमन मे सनी बोटी खा रहे है। कितनी घृणा है इस काण्ड मे! पर काव्य मे यह भी वीभत्स रस की आदित्यिक पदवी पर है।

लोथड़े माँस के बिखरे थे, शोणित मे होती थी छप छप

और इस अद्भुत दृश्य मे तो आश्चर्य होता है। कौतूहल मे होकर दर्शक न जाने क्या खोज रहे है। यहाँ भी वही चित्र, वहाँ भी वही चित्र। इसी विचित्रता को अद्भुत रस का गौरव मिला है।

अभी हृदय मे, अभी दृगों, मे जाने यह कैसी छलना है?

यवनिका के इस दृश्य मे बाल क्रीडा की मनोहर गंगा है। कितना आकर्षण है इस खेल मे! कितनी सत्यता और कितनी पवित्रता की चहल पहल है यहाँ! प्रेम का अलौकिक अमृत बरसता है यहाँ पर। इस सुधा

को वात्सल्य रस कहा है ।

घुटरुन चलत, रेगु तन मण्डित, गिरत, उठत फिर धावत,
—सूरदास

और अब दृष्टि की दूरी पर चमत्कार की ओर विस्तार करते हुए उस भावुक की अन्तिम स्थिति एवं कल्पना देखो ! वह योगी के सदृश आट लगाये आत्मा का परमात्मा मे विस्तार कर रहा है । प्रेम की असीमा से वह विस्तार का रहस्य खोलना चाहता है । पर भाषा यहाँ मूक है । कवि यहाँ गूँगा हो गया है । पर वह परम शान्ति मे लीन लौकिक चाह की चिन्ता से दूर है। इस शान्ति की अभिव्यंजनात्मक मधुरता ही तो शान्त रस की धारा है ।

चार दिनो का मेला पगले ! मरघट मे होता ।

× × ×

स्वप्नों का संसार अरे ! यह ढलती फिरती छाया ।
मिट्टी बन पैरों मे रुँदती सोने जैसी काया ॥

इसके अतिरिक्त न जाने कितनी धारायें है इन रसात्मक अनुभूतियो की ! कितनी प्रेरणायें हैं इन के प्राणों मे ! कितनी सज धज से दमकती हैं इनकी शैलियाँ ! अभिधात्मक अभिव्यक्ति, व्यंजनात्मक वाक्य एवं लक्षणात्मक शैली एक ही उद्‌गम से निकल कर न जाने कहां कहां तक विस्तार करती हैं ! वह व्यष्टि की अनुभूतियां से निकल कर समष्टि का प्रयोजन सिद्ध करती है । वही आत्मैक्य की अमरता है, तथा वही त्रिलोक की तस्वीर है ।

पर अमरता की ये सच्ची अनुभूतियाँ चिता की उठती हुई लपटें हैं । स्मृति की विद्युत सी कौंध तथा पीड़ा से पिघली हुई मेघो की श्वासें है । प्रकृति मे आत्मा की परछाईं प्रकाश की ओर दौडती है, पर लहरें हाथ नहीं आती । यही वह लक्ष्य है जहाँ प्यास तडपती है । यही वह कहानी है जो पूरी नही होती । यही वह दीपक है जिसके उजियाले मे कम्पन है ।

अब तुम ही बताओ मैं इस विस्तार को कौन सी परिभाषा मे बाँधू ? ओस की ये बूंदें उलझती ही जाती हैं, क्या कभी सुलझ भी सकेंगी ?

उत्तर मे एक प्रतिध्वनि सर्वत्र गूंज गई—वह उलझन ही क्या जो सुलझ जाये, और वह प्रेम ही क्या जो उलझन न बन जाये।

कवि उल्लास से उठा और विष का प्याला एक घूँट में पी गया। पर वह रिक्त प्याला किसी ने फिर विष से भरा, और कवि फिर पी गया। इसी प्रकार प्याला भरने वाले नहीं थके और कवि पीता पीता नहीं थका।

दर्शक चमत्कार मे चौंधिया गये तथा कवि शून्य में श्वास लेने लगा। एक झोका आया, आँसुओ की सरिता के बाँध टूटे। कवि का हृदय उस मे विद्युत सा तडपता हुआ तैरने लगा। एक दिन उसी तट पर वह स्मृति बन गया।

साहित्य तथा समाज

प्रकृति पुरुष के त्रिगुणात्मक संगम पर समाज साहित्य-दर्पण लिये खडा है। छाया तथा रहस्य के लौकिक और अलौकिक मंच पर साहित्य स्थूल एवं सूक्ष्म की परिभाषा हृदयंगम करा अनन्त कलाकार की लीला मे तल्लीन है। सृष्टा की लेखनी मे वह मुद्रणालय है जहाँ जड और चेतन मुद्रित हो समाज एवम् अनन्त के सामने आते हैं, जहाँ व्यष्टि एवं समष्टि का समन्वय होता है, जहाॅ साहित्य तथा समाज का अन्तर और सामंजस्य निखरता है, जहाँ समाज की कसौटी पर परख होती है, जहाँ सामाजिक प्राणी की अन्तर्प्रवृत्तियो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कवि करता है।

परिभाषा मे साहित्य अमृत-स्रोत है, और समाज समयानुसार विचारो से रचा हुआ सूक्ष्म शरीर—जिसका जीवन साहित्य है। या यूं कहो कि साहित्य सर्वतोमुखी दर्पण और समाज उसमे दीखने वाला रूप है।

साहित्य सागर की तरह अथाह है, सत्य की तरह अनश्वर है, रहस्य की तरह ब्रह्म है। सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का त्रिवेणी संगम यदि कहीं दिखाई देता है तो वह साहित्य मे ही। साहित्य वह अक्षय कोष है जिसमे दर्शन भी है और विज्ञान भी, जिसमे राजनीति भी है और प्रगति भी, जिसमे इतिहास भी है और समाज भी, जिसमे सृष्टा भी है और सृष्टि भी, जिसमे निवृत्ति भी है और प्रवृत्ति भी।

साहित्य शब्द मे संसार है, अर्थात् शब्दमय संसृति साहित्य ही है और साहित्य के निस्वन मे समाज सीमा का विधान। साहित्य वह कृषि है जिसमे समाज का खाद भी काम आता है। समाज वह है जो उस उपज मे जीवन पा स्वत्व की रक्षार्थ स्वस्थ है।

राष्ट्र की अन्तरात्मा साहित्य-दर्पण में दिखाई देती है। समाज की गति विधि साहित्य मे बोलती है। व्यष्टि का हृदय साहित्य में निर्दिष्ट है। साहित्यालोचन समाज की कसौटी है। प्रकृति एवं परिभाषा साहित्य में स्पष्ट है।

क्या साहित्य तथा समाज का अनादि सम्बन्ध है? यह प्रश्न आदि साहित्य से हल होता है। क्योंकि प्रथम काव्य की रचना हुई थी, अतः तब साहित्य शब्द केवल काव्य तक ही सीमित था। कुछ विद्वानों के मतानुसार काव्य का स्वत्व अनादि साहित्य वेदों के समय से है। तब तो निचोड यह निकला कि व्यष्टि एवं समष्टि-समाज का काव्य से अनादि परिचय है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के बन्धनो मे वह बँधा हुआ है। जलचर, थलचर और नभचर इनमे सभी प्राणियों का अपना अपना समाज है। प्रत्येक देश एवम् प्रत्येक धर्म अपने अपने पृथक् नियमों के आधीन है। हर समाज के रीति रिवाज़ अलग अलग हैं। भिन्नता यहाँ तक है कि एक समाज मे जो पाप है दूसरे समाज मे वही धर्म। भिन्नता ही का नाम संसार है। तभी तो वह मिथ्या कहलाता है। एक ओर जहाँ प्रत्येक धर्म एवम् देश का भिन्न भिन्न समाज है, दूसरी ओर तनिक दूरदर्शिता से देखने पर सारी मनुष्य जाति भी मानव समाज ही कहलायेगी।

अस्त व्यस्त व्यक्ति ने सभ्यता की व्यवस्था में प्रवेश किया। सुख शान्ति और विस्तार के लिये व्यक्ति को मिलकर रहने की आवश्यकता हुई। उसने सम्बन्ध जोडे। फलतः परिवार समाज राष्ट्र और संसार की रेखा रची गई। विकास की ये सीढ़ियाँ ही मनुष्य को सभ्यता की ओर ले गई। उसके सुख के लिये पंचायतो की रचना हुई। समाज का मूलाधार भी यही है। उस की एक स्थिति व्यष्टि है और सम्पूर्ण स्थिति समष्टि, और साहित्य व्यष्टि एवं समष्टि की गति गरिमा तथा प्राण है। समाज का स्वर साहित्य है। उसकी जागृति साहित्य है। उसका प्रकाश साहित्य है।

प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति अलग अलग होती है। किन्तु कवि दृश्य और अदृश्य मे आत्मैक्य की अनुभूति अंकित करता है। आत्मैक्य में ही सत्य है।

सत्य मे भिन्नता नही होती । सत्य मे तादात्म्य होने पर ही व्यष्टि मे समष्टि और समष्टि में व्यष्टि दिखाई देती है ।

सत्य का यह स्वरूप साहित्य एवम् साधना मे ही मिलता है, समाज मे नहीं । समाज तो परिवर्तनशील है । वह गिरगिट की तरह बहुत से रंग बदलता है । उसमे दु:खो की दुर्द्धर आग भी दहकती रहती है । समाज मे मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती, साहित्य मे शान्ति मिलती है ।

साहित्य मे प्राणी का हृदय झाँकता है, जीवात्मा और परमात्मा मे तादात्म्य रहता है । कवि की रचना पीडित के प्राण और स्नेह से शान्ति के पथ पर अनुभूतियों के दीपक जला रही है । अभंगुर अनुभूतियो की अभिव्यंजना और आत्मा साहित्य में है। साहित्य तपता हुआ सूर्य है और समाज उससे प्रकाशित संसार। बिना साहित्य के समाज उन खुली हुई आंखों सा है जो प्रकाश के बिना देख नहीं सकतीं । साहित्य जलता हुआ दीपक है और समाज दीपित ज्योति मे दमकता हुआ दृश्य । साहित्य ही समाज की कृषि के लिये वह वर्षा है जिससे फल और फूल फैलते हैं ।

समाज तथा साहित्य का जल और जल की लहरों जैसा सम्बन्ध है, जो अलग दीखती हुई भी घुल कर साहित्य-सिन्धु मे मिली रहती हैं । इसी साहित्य-सागर मे समस्त रत्न झिलमिलाते हैं । समाज के सब अंग साहित्य में प्राप्य हैं । वर्ण व्यवस्था की रूप रेखा साहित्य ही मे शैली भेद से है । इस के विपरीत समाज में साहित्य के सब अंग नही ।

साहित्य समालोचक और दर्शनीय दर्पण है, जिसमे सब कुछ दिखाई देता है । कवि समाज की कठोरता से कुचले हुए फूलो को खिलाता है । वह हंस की तरह समाज के दूध और पानी को अलग अलग करता है । वह व्यक्ति एवम् समाज की शान्ति के लिये सृजन है । साहित्य की अनुभूतियाँ सब के लिये प्रेरणा होती है । उसकी कल्पना एवम् रचना का सब के साथ सम्बन्ध है ।

यदि समाज मे सामाजिक साहित्य न हो तो वह खोखला रहता है । दार्शनिक साहित्य के बिना समाज की स्थिति जैसे हवा भरे गुब्बारे की सी होती है वैसे ही ऐतिहासिक, सामाजिक, मानसिक, काल्पनिक धाराओ के बिना

साहित्य तथा समाज का सौन्दर्य नहीं। अभिप्राय यह कि सृष्टि, राष्ट्र तथा समाज का स्तर साहित्य द्वारा ही ऊँचा उठता है।

यह अवश्य है कि समाज से अलग रह कर जीवन गाडी खींचनी दुर्भर है। अकेले में न गाना अच्छा लगता है और न रोना। समाज से बिगाड़ कर नर दर दर से ठुकराया जाता है। पर साहित्यिक समाज के पीछे नही चला करते, समाज को अपने पीछे चलाते हैं।

साथ ही समाज के साथ दुराग्रह करने वाला भी आदर का पात्र नही हो सकता। जब हम समाज का सम्मान करेंगे तभी हमारा सम्मान होगा। यदि समाज ऊँचा उठेगा तो उसमे रहने वाला स्यम् ही ऊँचा उठ जायेगा। और समाज तभी ऊँचा उठ सकता है जब सामाजिक प्राणी जो जीवन मे हो वही समाज मे, और इस पूर्ति के लिये उच्च कोटि के साहित्य की आवश्य-कता है। हमे ज्ञान और विज्ञान के विकास के लिये साहित्य चाहिये। जीवन और साहित्य का माध्यम सत्य है, तथा समाज का माध्यम साहित्य।

साहित्य से ही व्यक्ति का सुधार होता है। समाज के विकास का एकमात्र साधन साहित्य ही है। हमारी भाषा मे त्रिलोकव्यापी सूत्र साहित्य है। दूसरे देशो मे भी भारतीय साहित्य का आशातीत आदर है। जर्मन, फ्रेन्च, रशियन एवम् अंग्रेज़ी आदि अनेकों विदेशी भाषाओ और राष्ट्रों ने भारतीय साहित्य की पूजा की है। हमारा महान साहित्यिक, सामाजिक एवम् सर्वांगीण सुन्दर काव्य 'राम चरित मानस' त्रिलोक की निधि है। हमारे श्रद्धेय उपन्यासकार प्रेमचन्द जी के सामाजिक उपन्यासो मे समाज की गति विधि और विकास के चित्र बोले है। महान कलाकार 'प्रसाद' और गुप्त जी के साहित्य मे समाज की आत्माये हैं। इसी प्रकार अनेको साहित्यकारो की कलाकृतियों मे समाज तथा साहित्य का बहुत कुछ आत्मैक्य है।

हमें यह नही भूलना चाहिये कि साहित्य कोई संकुचित क्षेत्र नही है। वह तो विकास के लिये विस्तार का माध्यम है। हम यदि कुछ अंगो से चिपट कर यह कहने लगें कि साहित्य केवल कहानी ही है, कविता ही है, उपन्यास ही है, तो हम गति को छोड कर जाले में उलझ जायेंगे।

प्रसाद एवम् प्रभात तभी देखते हैं जब तपते हुए सूर्य में सारा संसार दिखाई दे रहा हो। साहित्य रहस्य और छाया का प्रतिबिम्ब है। उसमें अन्तर्जगत एवम् बहिर्जगत झाँकते हैं। समाज और व्यक्ति के उपयोग का सूक्ष्म और स्थूल प्रसाद ही उसकी व्यापकता है। वह चेतना का बीज बन कर हर फूल को विकसित करे, यही नहीं कि बुलबुल की तरह गुलाब के फूल से ही चिपट कर बैठ जाये।

समाज केवल मानसिक भोजन से ही तृप्त नहीं होता। उसकी शान्ति के लिये धर्म भी चाहिये तथा राजनीति भी, ज्ञान भी चाहिये और भौतिकता भी, दार्शनिकता भी चाहिये एवम् मनोविज्ञान भी। वह प्रत्यक्ष के साथ इतिहास भी खोजता है।

साथ ही यदि कोई समाज साहित्य से शून्य है तो वह श्मशान में पड़े उस शव के सदृश है जिसे गिद्ध और कौए नोच नोच कर खाते रहते हैं। समाज को अपना स्तर ऊँचा उठाने के लिये साहित्यास्था में तन मन धन लगाना होगा।

अब जरा काल की दृष्टि से भी विवेचन करलें। बन्धन काल में दूसरी जातियों के साहित्य ने अपा की तरह हमारा आलिंगन किया। उसकी चमक दमक और मदभरी अँगड़ाइयों पर रीझ भारतीय समाज एवम् सभ्यता पश्चिमी रंगों में रँगी जाने लगी। साहित्य के आदान प्रदान से सामाजिक आदान प्रदान भी होता ही है। जब शब्द विनिमय होगा तो भाव विनिमय तो स्वत. एक दूसरे के समाज में रंग भरेगा ही। साहित्य की छाप से समाज अछूता नहीं रह सकता। यदि किसी समाज को बदलना है तो उसके साहित्य को बदल दो।

पर देखना तो यह है कि साहित्य तथा समाज का क्या कर्त्तव्य है ! हम आज स्वाधीन देश में इस समस्या पर सोच रहे हैं। आज हमें स्वतन्त्रता से सोचने का अधिकार मिला है। आज हमारे पास साहित्य तथा समाज के विकास के लिये क्षेत्र है। आओ ! हम विशाल हृदय और अथक प्रयत्नों से अपने साहित्य तथा समाज में असीमित विकास करलें।

पर देखना तो यह है कि क्या आज हम सार की ओर जा रहे है।

आज के समाज का धुरन्धर मनोवेगो की तरंग मे तीव्रता से दौडा जा रहा है। सत्य और शिव को छोड जीवन के सुन्दर से ही आज वह तृप्त है। सिनेमा चित्रो के एक ही वातचक्र मे वह पागल सा चक्कर काट रहा है। चल चित्रो के द्वार "पर सौ सौ जूते खायें तमाशा घुस कर देखें" कहावत याद आ जाती है। लेकिन पुस्तकालय के द्वार पर शून्य रोता दिखाई देता है।

कविता से दूर चित्रो के गन्दे गीतो पर झूमने वाला सामाजिक आज साहित्य से कितनी दूर भाग रहा है! क्या सभ्यता का विकास साहित्य के ह्रास के लिये होता है? आज के समाज मे अभिनेता और अभिनेत्री के चित्र दिखाई देते हैं। विकास के वैज्ञानिक यंत्र चीख चीख कर समाज को इन विषैली तानो पर रिझा रहे हैं। पर साहित्यकार शून्य मे महल खडा कर समाज को बुलाना चाहता है। क्या जन-साहित्य से दूर जा साहित्य समाज को आकर्षित कर सकेगा?

समाज को भी आंखें खोलनी चाहियें। विश्व आँखे खोल कर उसके सामने खडा है। समाज के अस्तित्व का आधार केवल साहित्य ही है। वह अपने निर्माण मे साहित्य को माध्यम बनाये बिना विकास नहीं कर सकता।

हमे साहित्य की अर्चनार्थ उठना चाहिये। साहित्यकार सृजन के लिये लेखनी लिये सोच रहा है कि कैसे लिखूँ! और समाज कह रहा है कि भूख की भभकती हुई ज्वाला मे लिख! कब तक लिखेगा वह विचारा! क्या केन्द्र को संसार धिक्कारेगा नही!

पर जान पडता है माया के मोह मे यह आवाज़ नही पहुँचती। साहित्यिक देवताओ! तुम्हे तपना ही पडेगा। लिखो, ऐसा और इतना लिखो कि तुम्हारी वाणी सब ओर गूंजती रहे। तुम तपते हुए सूर्य हो, समाज आँखे होते हुए भी तुम्हारी ओर नही देख सकता। उठो! समाज के एक एक अंग को टटोल कर देखो, उसके बिधे बन्दी और रोगी अंगो का साहित्य सृजन से उपचार करो! तुम्हारी लेखनी से वह स्वस्थ साहित्य निकले जो शारीरिक ऐतिहासिक, मानसिक, एवं आध्यात्मिक विकास से त्रिलोक मे आदृत और अर्चित हो, जिससे हम तेजस्वी हों हमारे साहित्य तथा समाज के विकास में आदि और अन्त कीर्तिस्तम्भ हो।

समालोचना

शीशे की दर्शनीय अलमारी में सोने का एक बहुत सुन्दर हार जगमगा रहा था, जिसमें जड़े बहुत से बहुमूल्य रत्नों से आंखें चौंधिया जातीं थी। रंग बिरंगी चित्रकारी से चमकती हुई हीरक माला में मणियों एवं मोतियों की झालें सी दमकतीं थीं। स्वर्ण पात्र पर हीरों के उस हार को देखकर ग्राहक ने जौहरी से पूछा—क्या मूल्य है इसका ?

जौहरी ने हार की प्रशंसा करते हुए कहा—पांच लाख रुपये।

ग्राहकः—पर यह है तो सच्चे हीरे मोतियों का ? सोने में खोट तो नहीं है ?

जौहरीः—परखवा लीजिये !

ग्राहक—अच्छा, तो ये पांच लाख रुपये रख लीजिये, मैं अभी जँचवा कर उत्तर देता हूं।

हार लेकर ग्राहक स्वर्णकार के पास पहुंचा। हार उसे दिखाते हुए कहने लगा—मैं यह हार खरीदना चाहता हूँ, कैसा रहेगा ? क्या इसके हीरे मोती सच्चे हैं ? सोने में खोट तो नही है ?

स्वर्णकार ने हार हाथ में लेकर देखना शुरू किया। हीरे को कभी उसने चख कर देखा और कभी घिस कर। कभी उसे प्रकाश में देखा और कभी अँधेरे में। मोती को कभी हथेली पर रख कर देखा और कभी उलट पुलट कर। कभी उसने हार की बनावट पर दृष्टि डाली और कभी उसके रत्नों पर। बार बार इसी प्रकार देखते देखते उसने कसौटी उठाई और सोने को उस पर कस कर देखने लगा।

देखते देखते वह बोलाः—सोने में इतना तॉबा है, इतना पीतल। यह रत्न कीमती है और यह बनावटी। ये मोती सच्चे है और ये झूठे। यह नीलम है और यह कोहेनूर। यह फूल टेढा है, और यह सीधा। इसमे

इतने टॉके है और इतने फूल इसी मे काट कर बनाये हुए है।

गुण और दोष दिखाते हुए अन्त मे—उसने कहा–सब मिला कर देखने से हार अच्छा है। चार लाख रुपये मे बुरा नही। सोने मे मुझे अभी कुछ सन्देह है। अग्नि मे तपाये बिना पूरा पता नहीं चल सकता।

ग्राहक को सन्तोष न हुआ। वह एक दूसरे पारखी के पास पहुँचा। वही प्रश्न उसने उस से किया। प्रश्न के उत्तर मे पारखी ने पूछा—हार किस के यहाँ का है ?

ग्राहक—जवाहर जौहरी के यहाँ का।

पारखी ने नाक भौं चढाते हुए हार देखा और कहा—यह तो पीतल का है।

कहते समय वह ईर्ष्या से फुका जा रहा था।

ग्राहक घबरा गया। वह सोचने लगा मेरे पाँच लाख रुपए ! और हार लेकर सीधा जौहरी के यहाँ पहुँचा। काँपते हुए उसने कहा–यह लो अपना हार, यह तो पीतल का है।

जौहरी का मन बैठ गया। उसने पसीना पूंछते हुए कहा–यह सोने ही का हार है। जरा और भी कही दिखा लीजिये।

जौहरी ने बहुत कहा पर ग्राहक का मन नही भरा।

दूसरे दिन एक और हार खरीदने वाला आया। वह स्वयम् पारखी था। हार को देखते ही वह मुग्ध हो गया। प्रशंसा करते हुए उसने कहा–बडी लगन से बनाया है किसी ने। एक एक नग नग ही है। सोना क्या कुन्दन है। क्या मूल्य है इसका ?

जौहरी गद्गद् हो गया। प्रसन्नता से उसने कहा–पाँच लाख रुपए। और साथ ही उसने कहा–अब नया हार ऐसा बनाऊँगा कि जिसकी जोड का हार नहीं मिलेगा।

पारखी–कुल पाँच लाख रुपए ! क्या कुछ खोट भी है इसमे ?

जौहरी–अग्नि मे तपा कर देख लीजिये।

बस यही अग्नि-परीक्षा ही समालोचना है।

आँखें देखने के लिये है और दिवाकर दिखाने के लिये। प्रकाश के बिना हम आँखें होते हुए भी नही देख सकते। दीपक का उजाला अँधेरे मे रखे रत्नों को दिखाता है। सूर्य के बिना हम कमल के खिले हुए पूर्ण स्वरूप को नही देख सकते। कुमुदिनी तभी मुस्काती है जब शशि की स्वर्ण रश्मियाँ उस पर बिखर जायें। हमारे सामने रक्खा हुआ हीरा भी किसी के बताये बिना पत्थर ही है। विलोडन के बिना नवनीत नहीं निकलता। गुरु के बिना ज्ञान से शून्य रहते हैं।

बस ठीक इसी प्रकार समालोचना के बिना हम किसी वस्तु के दर्शन नही कर सकते। कसौटी ही किसी वस्तु की परख, परिभाषा और स्वरूप है।

मीमांसा से परिभाषा करने पर लक्षण निकलता है कि समालोचना किसी वस्तु का समावलोकन ही नहीं अपितु निर्णय भी है। समालोचना वह नीरक्षीर विवेक है जो दूध और पानी को अलग अलग कर उपादेयता का लक्षण देता है। आलोचना विस्तार और सूक्ष्म की परिधि मे भ्रमण कर तह खोज कर लाती है। विवेचना ही अँधेरे और उजाले का ज्ञान, यथार्थ एवं आदर्श उपस्थित करती है।

तात्पर्य यह है कि मनोवैज्ञानिक और शास्त्रीय तुलना से समालोचना ही वस्तु की परिभाषा है। विश्लेषण, स्पष्टीकरण एवं आत्मसात् समालोचना के गुरु गुण है। वस्तु के बहिर्मुख और अन्तर्मुख प्रकाशन को हम शुद्ध मीमांसा कह सकते हैं।

समालोचना ही आलोच्य वस्तु मे तादात्म्य कराती है। समालोचना ही कला की कला है। जिस प्रकार आँखें देखती है, जिह्वा स्वाद चखती है, कान सुनने का रस लेते है, उसी प्रकार समालोचना सब रसो को स्पष्ट कर उपादेयता और त्याज्य का पता देती है। वह विग्रह भी करती है और निर्णय भी देती है। निष्कर्ष से समालोचना उस न्याय को कहते हैं जो सब प्रकार से आलोच्य वस्तु में प्रवेश कर अभंगुर एवं ग्राह्य निर्णय उपस्थित करे।

समालोचना कला है या शास्त्र? अनन्त कलाकार की कृति मे

अनेको कलायें हैं। यह जो अठखेली सी रंग विरङ्गी संसृति हम देखते हैं इसे अनन्त कलाकार की रचना ही तो कहेंगे। उस कलाकार के इस मायावी मंच पर विभिन्न प्रणेता भिन्न भिन्न कलाओं के दर्शन कराते है। समालोचना भी एक कला ही है। जैसे कविता जीवन की कला है वैसे ही समालोचना कविता की कला है। शास्त्र के जाली से परिधानों मे खेलती हुई आत्मा ही सच्ची कला है। अर्थात् शास्त्र और कला की कसौटी पर समालोचना की परिभाषा मे हम कह सकते हैं कि समालोचना वह शक्ति है जो आत्मा को साकार करती है अथवा स्वर्ण के चेतन का प्रत्यक्ष है, स्वरूप का सत्य दर्शन है। यह वह कला है जो अन्तर्मुख होकर देखती है। यह वह शास्त्रीय यन्त्र है जो बिलोकर मक्खन और मट्ठा निकालता है। कला की कलम और शास्त्रो की स्याही के सामंजस्य ही से समालोचना सगुण होती है।

कला और शास्त्र के साहचर्य से ही सुन्दर समालोचना सम्भव है। अर्थात् कला और शास्त्र का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की सिद्धि नहीं। शास्त्र के नियमानुसार मूल नियमों विधानों और सिद्धान्तो को देखते हैं, और कला से नैसर्गिक प्रयोगों एवं अनुभूतियो का चित्रण होता है। पर क्रियात्मक रूप के लिये शास्त्रो को साहचर्य बनाये बिना शृङ्खला नही जुडती। अब प्रश्न यह खडा होता है कि कला की प्रधानता कहे या शास्त्र की? उत्तर में कहना तो यही पडेगा कि कला ही प्रधान है, किन्तु समालोचना मे दोनों तत्वो का आलम्बन और आश्रय सा सम्बन्ध है। किसी स्थल पर शास्त्रो को और किसी पर कला को प्रधान रखना पडता है। तभी आलोच्य वस्तु की यथार्थ सुन्दरता प्रकट होती है। स्पष्टीकरण यह है कि समालोचना से विद्या कला और शास्त्र का नैसर्गिक साहचर्य एवं सहयोग अनिवार्य है।

सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक दृष्टि से समालोचना वैज्ञानिक गवेषणा सिद्ध होती है। पर निर्णयात्मक पद्धति में वैज्ञानिक की अपेक्षा संश्लेषण विश्लेषण होते हुए भी मनोवैज्ञानिकता विशेष रहती है।

यह सब होते हुए भी जब निर्णायक पद्धति मे समालोचना गुण

दोष पृथक् की प्रथा उपस्थित करती है तो कहना ही पडता है कि समालोचना कलात्मक वैज्ञानिक अर्थ है।

इस प्रकार तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक, चारित्रिक, आदर्शात्मक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, अध्ययनात्मक आदि शैलियाँ समालोचना की रीति है। अनेक ढंग और कलात्मक विशेषता द्वारा समालोचना से विग्रह और निर्णय निखर कर दमकते हुए सामने आते है। जिस प्रकार प्रत्येक लेखक की अपनी पृथक शैली होती है इसी प्रकार समालोचक भी अपनी पृथक पृथक शैली से समालोचना सार गर्भित करते है। पर समालोचक के हृदय एंव बुद्धि का आलोच्य वस्तु मे आत्मिक सम्बन्ध जुडा रहना अत्यन्त आवश्यक है।

समालोचना मे प्राय. सभी शास्त्रो का परामर्श रहता है। आलोच्य रचना का सत्य शिव और सुन्दर खोजने के लिये समालोचक को अन्य शास्त्र अन्तर्गत आलोक के लिये लेने पडते हैं। जैसे सुन्दरता से मनुष्य का स्वाभाविक स्नेह है, एवं रचनाकार तो सौन्दर्य का उपासक होता है। अत समालोचना शास्त्र का सौन्दर्य शास्त्र आत्मा मानना चाहिये, तभी तो समालोचना मे अन्तर्जगत और बहिर्जगत का सौन्दर्य दिखाई देगा। सभ्यता समाज तथा कालानुसार सौन्दर्य समालोचना की भिन्न भिन्न प्यालियो मे झलकता है। यदि समालोचना मे काल्पनिक एवं मानसिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति नहीं हुई है तो वह सौन्दर्यानन्द एवं हृदय चित्रो से रिक्त रहती है। सौन्दर्य की खोज समालोचना का प्रधान गुण है।

इसी प्रकार समालोचना का तर्कशास्त्र, भाषाविज्ञान, व्याकरण रचनाकला तथा देशकाल की रीति आदि लक्षणो पर पूरी उतरना भी नितान्त आवश्यक है। तभी वह नियमित व सर्वतोमुखी विशुद्धता को प्राप्त होती है। मनुष्य स्वभाव से ही तार्किक है। बुद्धि से वह प्रत्येक बात को टटोलता है। अत जो बात बुद्धि न समझे वह बात समालोचना की विशेषता नहीं। भाषा की अशुद्धता तथा विशुद्धता पर भी आलोच्य वस्तु को परखना मीमांसा के लिये कीटभ्रंग है। स्वर्ण हार कंठ मे ही शोभा पाता है, कीचड मे धँस कर नही। अर्थ यह कि समालोचना की शुद्धता रचना कला की कसौटी पर ही है। देशकाल तथा अन्य अवशेष जगत के साथ समालोचना मे सभी गुण दिखाई

देने चाहिये। भाषा भाव शैली आदर्श और उद्देश्य तभी स्पष्ट होता है जब समालोचना सब शास्त्रो की आरसी हो। तभी मीमांसा मे उपादेयता आती है, तभी आलोचना मे सर्वांगीणता आती है।

समालोचना किसी वस्तु को चारों ओर से टटोल उसका आदर्श उद्देश्य और लाभ उपस्थित करती है। अतः समालोचना के उद्देश्य एवं लाभ पर विचार भी आद्दत है। समालोचना का मुख्य उद्देश्य सूत्र रूप से सत्य, लोक मांगल्य, और सौन्दर्यानन्द की खोज है। समालोचना का ध्येय यह भी है कि जिन दोषो से रचना रुग्ण हो, कलुषित हो, अरुचिकर हो, अथवा विषैली हो उनसे पाठक और रचनाकार एवं अन्य जनो को सावधान करदे। समालोचना ही यह ज्ञान कराती है कि अमुक ग्रन्थ कितना ग्राह्य और कितना त्याज्य है। साथ ही लेखक भी सफलता और असफलता से परिचित हो जाता है।

समालोचना से ही ग्रन्थ के सौन्दर्य पर सूर्य का वह प्रकाश पडता है जिससे कि प्रत्येक उसे देख सके। समालोचना दर्पण से ही रचना सरस और सरल साध्य हो जाती है। समालोचना ही सुन्दर आलोच्य रचना को ऊंची उठाती है और समालोचना ही कलुषित असुन्दर एवं त्याज्य रचना को धूलि धूसरित करती है। समालोचना के बिना आलोच्य रचना का गौरव और स्थान साहित्य मे स्थिर नहीं होता। समालोचना ही रचना का साहित्य एवं समाज में स्थान बनाती है तथा साहित्य और समाज समालोचना से ही रचना का उद्देश्य प्राप्त करते हैं।

समालोचना आलोच्य रचना की कुंजी भी है। जटिल एवं दुर्बोध ग्रन्थियो को वही सुलझाती है। समालोचना ही रचना एवं रचयिता से कही अधिक दमकती हुई दीपक दिखाती है। निर्माता की प्रतिभा का प्रकाशन समालोचना ही है। समालोचना ही रचना को प्रसिद्ध और व्यापक बनाती है। रचयिता को यश लाभ की प्राप्ति समालोचना के बिना नही होती। समालोचना को रचना के लिये एक बडा पुरस्कार कहना चाहिये। वह केवल रचना के लिये ही पारितोषिक नहीं अपितु समालोचक की प्रतिभा का प्रतिपादन भी है।

उद्देश्य की परिचिति कर समालोचक को समझना भी हमारे लिये प्रसाद है। समालोचक निष्पक्ष सर्वतोमुखी विशेषज्ञ होना चाहिये। वह राग द्वेष से रहित समदर्शी होकर ही सत्य समालोचना कर सकता है। उसकी स्थिति उस माता के समान होनी चाहिये जो धरती माँ सब के लिये सदृश होती है। उसका हृदय उस दर्पण सा हो जिसमे जिसका जो स्वरूप हो वही दिखाई दे।

समालोचक वह माली है जो फूल और काँटों को हाथ में लेता है तथा बताता है फूलों के सौन्दर्य एवं काँटों की नुकीली चुभन को। समालोचक फूलो की सुगन्ध अपनी समालोचना की गगरी में भर उदार हृदय से बाँटता है। वास्तव मे वह उस सत्य का स्वरूप है जो कभी ओझल नही होता। वही वह न्यायाधीश है जो न्याय संगत निर्णय देता है। समालोचक से ही साहित्य न्याय की आशा रखता है। या यह कहो कि साहित्य ने अपनी समृद्धि के लिये समालोचक को न्यायाधीश के पद्मासन पर बिठाया है।

और यदि समालोचक पक्षपाती हो तो साहित्य के लिये विष का काम करता है। वह पक्षपात से कलुषित रचना आदृत सिद्ध करता है। उसकी स्थिति उस प्राड्विवाक सी होती है जो अपने लालच की पूर्ति मे असत्य को भी सत्य सिद्ध करता है। यह तो सत्य है कि समालोचक मे बुद्धि तत्व की प्रधानता होती है, भावपक्ष कलापक्ष, यथार्थ और सत्य से मिले रहते हैं। पर समालोचना का अर्थ कुतर्क नही, अन्याय नहीं।

जिस प्रकार समालोचक से अमृत की प्राप्ति होती है उसी प्रकार दुरालोचक से अमृत नष्ट भी होता है। अज्ञान ईर्ष्या और पक्षपात की लेखनी से जो समालोचना होती है वह आलोच्य वस्तु की अर्थी बना श्मशान को शून्य सत्यता में चिता जला देती है। यदि समालोचक किसी सुरचना की जो किसी निर्माता के श्रमसाध्य की आत्ममूर्ति है जान बूझकर हत्या करता है तो उसे सबसे बडा पापी कहना चाहिये। उसका यह दोष ब्रह्म हत्या, गौ हत्या, मातृ हत्या, देश समाज एवं संसार की हत्या से कम नहीं। दुरालोचना मे समालोचक के हृदय का प्रतिबिम्ब नहीं रहता अपितु

कुविचारो का विषैला प्रवाह होता है।

समालोचना खेल नही है और ना ही खिलौना। पर कुछ मनचले आज समालोचना को खेल समझ कर खेल रहे है और कुछ खिलौना समझ बच्चो की तरह पटक पटक कर तोड रहे है। क्योकि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य ने कोई ऐसा विधान नहीं बनाया जिसके अनुसार अपराधी कलम को दण्डित किया जा सके। कोई भी कलम किसी की भी हत्या कर दे, फाँसी तो दूर ग्लानि तक का डर नही उसे। कोई भी कलम कुछ भी चुरा ले, कोई जेलखाना नही उसके लिये। ना ही सरस्वती का कोई ऐसा न्यायालय है जिसने दोषी कलम पर खुला अभियोग चलाया जा सके। क्या न्याय की कलम का अपनी जाति पर यह पक्षपात पूर्ण अन्याय नही!

समालोचक की स्थिति पथ प्रदर्शक सी है। अस्तु यदि समालोचक जान बूझकर देश समाज राष्ट्र एवं साहित्य को जीवित रहते श्मशान की ओर ले जाता है तो इससे बडा अनर्थ और क्या हो सकता है? क्या आज समालोचक इस अभिशाप से बचना चाहता है? यदि समालोचना की अनियन्त्रित कलम नियन्त्रण में नहीं आती है तो या तो उसका उदारता से बहिष्कार कर दो या उसे तोड फेंको।

समालोचक तो सर्वगुण सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ निरीक्षक एवं नेता है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी स्वभाव से आलोचक है, बुद्धि से बालक भी अच्छा और बुरा पहिचानता है, सभी मे तर्क शक्ति कुछ न कुछ रहती है, पर समालोचक और साधारण तार्किक मे इतना ही अन्तर है जितना सोने और जागने मे। आलोचक अभिव्यंजक है, और साधारण मनुष्य प्रसुप्त आस्वादक, अर्थात् समालोचक ज्ञानानुभवादि से शक्ति विवर्धित और विकसित करता है। पर दुर्गुण में यही गुण दोष का रूप ले लेता है। जैसे एक ही बूंद भिन्न भिन्न संग मे अमृत, विष और घनसार बनती है। संसार में प्रत्येक तीन गुणों के बल पर है—नैसर्गिक, जन्मसिद्ध एवं उपार्जित। इनमे से कोई गुण किसी मे होता है तथा कोई किसी में। पर समालोचक इन तीनो गुणो से विभूषित ही श्रेष्ठ मानना चाहिये।

समालोचक मे गुण ग्राहकता, आचरण और उदारता यदि नहीं है तो वह उद्देश्य से गिरता है। आज हम देखते हैं कि समालोचक सत्यादर्श मे दूर जा रहा है। साहित्यिक गुटबन्दी तथा मेरे तेरे की भावना से वह भी विष उडेलने मे झिझकता नहीं। यही नही, आज की समालोचना रचनागत गुण गरिमा से नहीं, अपितु नामगत आधार से होती है। समालोचक यह नही देखता कि रचना क्या है, वह यह देखता है कि रचना किसकी है। साहित्य की पवित्रता मे भी यह राजनीति जैसे भयंकर भूत आ रहे हैं। नाम के आधार पर हम भद्दी भूलों को भी भूल जाते हैं। राजनीति की तरह साहित्य मे भी अखाडेबाज़ी चल रही है। मल्लयुद्ध मे पशुभावनाओं की धूमधाम और लूट मची हुई है। विकास के इस युग मे यह गॉव की ओर दौडती हुई आग कही गाँव को जला न दे!

तो क्या समालोचक भी उसी ओर बहेगा? क्या हंस भी गन्दे नालो का पानी पियेगा? समालोचक साहित्य का बडा भारी वल है, क्या वह साहित्य को क्षीण करने पर तुलना स्वीकार कर बैठा है? उसे इसका नकारात्मक उत्तर देना होगा। आलोचक आदर्श अमर और आदरणीय हो—यही साहित्य की चेतना चाहती है।

समालोचना में ही सौन्दर्यामृत है। यह अमृत आलोच्य रचना को मथ कर ही निकाला जाता है, न कि लेखक को मथ कर। प्राय. देखा जाता है कि रचना पर लेखक प्रकाशक एवं मुद्रण कला आँकी और समालोचना होगई। जैसे—

इस पुस्तक के लेखक ख्यातिप्राप्त नेता ...... हैं। इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके गीत बकरी के थनों की तरह चू पडते हैं। आदि—

पर क्या इस प्रकार के मखौल को समालोचना कहा जा सकता है? क्या छोटे छोटे लालच एवं स्वार्थ के पीछे पड निन्दा स्तुति करना श्लाघ्य है? क्या रचनाकार के बारे मे कहना समालोचना है? किसी लेखक ने ख्याति प्राप्त करली है इस आधार पर उसकी प्रत्येक रचना सुन्दर नही कही जा सकती। कसौटी पर रचना को कसना चाहिये, रचयिता को

नही। समालोचक जो कुछ कहे वह रचना के आधार पर, रचयिता के आधार पर नहीं। यदि कोई समालोचक किसी रचना की समालोचना करने से पहिले लेखक के नाम से ही अपना निर्णय बनाता है, तो वह केवल 'जी हुजूर !' कहने वाला ही समझा जायेगा। यह समालोचना ऐसी ही होगी कि किसी से कहा जाये कि फल खालो और वह मस्तिष्क खाने लगे।

समालोचना कोई खेल नही है। यह अमृत है, विष नहीं। पूरे श्रम और साधना का फल है। समालोचक बहुत गहरे मे उतर कर ये मोती निकाल कर लाता है। ये रचना में होते हैं। रचना के हर स्पन्दन, हर शब्द, हर भाव के साथ समालोचक को घुलना पडता है। रचना के उद्देश्य अँधेरे उजाले एवं आत्मा मे भ्रमण कर समालोचक भिन्न भिन्न प्यालियो मे भिन्न भिन्न रस लेकर आता है। समालोचना रचना की आकृति और प्रकृति एवं वेशभूषा आदि की दीपिका है।

समालोचक के हाथ मे धर्मकाँटा होता है, जिस तुला की तोल मे एक चावल का भी अन्तर नहीं होता। समालोचक के हृदय को हंस की परिभाषा में कहा है। इस परिभाषा में समालोचक की सूत्र रूप से सुन्दर परिभाषा है। इस लक्षण मे लक्ष्य स्पष्ट है।

समालोचक को यह नहीं भूलना चाहिये कि लेखक की क्या क्या स्थितियाँ होती हैं। कभी वह शिशु की तरह छेडते ही रो पडता है, कभी वह मन मे दुखी होता है पर प्रदर्शन में गम्भीरता से सब सह लेता है। एक स्थिति मे वह चिडचिडा होता है और एक मे गम्भीर। किसी स्थिति मे लेखक मनस्वी होता है और किसी में पूर्ण तपस्वी। अपनी पूर्ण शान्ति की स्थिति मे तो रचयिता प्रहार और प्रसाद प्राप्ति मे दुखी और प्रसन्न नही होता, क्योंकि यह साधक की सिद्ध अवस्था होती है।

पर असंयत और नामाधार पर की हुई समालोचना न तो लेखक को प्रसन्न करती है और ना ही साहित्य तथा समाज का कुछ लाभ करती है। ऐसी समालोचना लेखक और साहित्य की हत्या करती है। इसके अतिरिक्त आलोचक जो कुछ कहे वह शिष्टता एवं सभ्यता की परिधि मे

कहे। भाषा, मनुष्यता की सीमा को लाँघ न जाये। वह कल्याण की दृष्टि से कितनी भी कडवी बात कहे पर भाषा मधु सी मीठी हो। शैली हृदय स्पर्श करती हुई चले। समालोचना की शैली बहुत सरल होनी चाहिये। कहीं ऐसी शैली न हो कि समालोचना स्वयं उलझन बन जाये, और वह उलझन कंटकित हो। समालोचना-कानन मे सब फूल, सब रङ्ग, सब पत्ते सब काँटे, सब पेड, सब पत्ती, सब पर्यटक, सुन्दर और शान्त होने चाहिएं। हरियाली और उजाली मे शान्ति की सरसता हो। बाग मे तिरछे बंके तने भी होते हैं और वे हमे दिखाई भी देते है। जहाँ तक मनुष्य की परिधि है वहाँ तक दोष भी रहते ही है। अच्छे का महत्व बुरे से ही है। पर समालोचना मे बुरे की परिभाषा गाली नही।

आधुनिक समय मे समालोचना से जो साहित्य हमारे सामने लाया जा रहा है वह भली भाँति देखी और परखी वस्तु का आवर्तन मात्र है। आज के पत्र जिस प्रकार कुछ नामधारी नेताओं के प्रचारक और विज्ञापन हैं, जान पडता है आज की समालोचना भी कुछ चिमट कर बैठ गई है। क्या इससे साहित्य का विकास होगा? क्या कुछ चिकने चुपडे पत्र मेरी बात का निराकरण करके दिखायेंगे?

साहित्य की अपेक्षा आज राजनीति का नगाडा बज रहा है। पत्र पत्रिकाएं झोंपडी के दीपक की ओर न देखकर मीनार पर जलती हुई मशाल की ओर लपक रही है। "बापू" का आदर्श अब केवल जयध्वनि तक ही रह गया है। सीमा का ढोल पीटने के लिये ही मानो ये महापंडित हैं। पर पत्र पत्रिकाओं को चिढ़कर मेरी यह उक्ति निर्मूल करनी होगी। उन्हे समालोचना का आदर्श रखते हुए सत् साहित्य के प्रचार एवं प्रसार का साधन भी बनना होगा। साहित्य की व्यापकता और प्रचार से ही सर्वांगीण स्थिरता तथा गति विधि टिकी रह सकेगी। राष्ट्र का आत्मा साहित्य है और साहित्य को दीपिका समालोचना।

लेखक के जीवन से भी समालोचक का सम्बन्ध है। वास्तव में लेखक जो कुछ लिखता है वह सब उसके जीवन और क्षेत्रों का दर्शन ही होता है। वह मानसिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आदि जिन

जिन परिस्थितियों मे होता है, वे ही समष्टिगत हो साहित्य का स्वरूप ले लेती हैं। अतः यदि समालोचक रचयिता के जीवन से परिचित हो तो रचना का सुन्दर और भी अधिक व्यक्त कर सकता है। पूर्ण अभिव्यक्ति साहित्यिक नहीं कर पाता, पर समालोचना की कलम मे बडा बल है।

लेकिन आज हम देखते हैं कि समालोचना की कलम कुछ गन्दगी पसन्द होती जा रही है। उसकी सच्चाई पर सन्देह होने लगा है। वह डूबने लगी है। उसे डुबाने वाले कुछ खूबसूरत पत्र तथा शौकीन समालोचक है। इन हसीनो को अगर तालों में नहीं रखा गया तो सब को भ्रष्ट कर देंगे।

और उन समालोचको को भी आँखे खोलनी होगी जिनकी ओर आंखे लगी हुई हैं। उन्हे द्विवेदी और शुक्ल काल से भी आदर्श कलम चलानी होगी। जो लेखनियाँ लिखने लायक है उन्हें आलस्य छोडना होगा। समालोचना की नयी लेखनियाँ नये लेखको पर लिखना ही नहीं चाहती। उनकी दृष्टियाँ सीमित हो गई हैं। हम आँख मीच कर चलते हुए न जाने कितने रत्न ठुकरा देते है।

आलोचना की प्रत्यालोचना भी अमृत है। इससे समालोचना का निरीक्षण हो छाप लगा हुआ निर्णय केन्द्रित हो जाता है। छोटे न्यायालय का निर्णय बडे न्यायालय मे बदल भी जाया करता है। क्योंकि कभी कभी न्यायाधीश उत्कोच और सम्बन्ध से अन्याय भी कर डालते हैं। पुनः विचार मे प्रत्यालोचना मे अन्याय न्याय मे बदल भी जाता है। अतः आलोचना का निर्णय प्रत्यालोचना से सार्थक होकर दीप्त ही होता है। प्रत्यालोचना समालोचक को निखारती है। प्रत्यालोचना अनिवार्य ही नहीं, जीवन का माध्यम है। आज के कुकर्मों मे तो शुद्ध प्रत्यालोचको के बिना उद्धार की आशा मृगतृष्णा है।

अनेक तर्क और युक्तियों से समालोचना की पूरी व्याख्या बहुत विस्तार चाहती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भारतवर्ष एक समय मे पराधीनता फूट और अशिक्षा की भट्टी में झुलसता रहा है। इसकी कौनसी ऐसी वस्तु है जिस पर प्रहार नहीं हुए! यही कारण है कि हम हर बात के लिये पश्चिम की ओर देखते हैं। समालोचना की किरणें भी पश्चिम से पड़ीं। हो सकता है किसी दिन

सूरज तुम्हे पूरब ही मे दिखाई देने लगे। इसलिये जागो! और मौलिक विकास करो! हिन्दी साहित्य मे आलोचना निर्धन सी खडी है।

आज हिन्दी साहित्य का उत्तरदायित्व समालोचना पर है। उसमे टटोलने के लिये बहुत कुछ है। स्वतन्त्र देश की राष्ट्र एवं राज भाषा हिन्दी क्या समालोचना मे सूनी सूनी रह सकती है? उत्तर दो! कभी नही। साहित्य के विकास का साधन समालोचना है। सृजन करो! साहित्य शब्द मे संसार है और जीवन की चेतना। पर यह न भूलो कि आलोचना साहित्य की चेतना है। साथ ही यह भी न भूलो कि अनन्त का आदि शब्द केन्द्र भारत ही है।

साहित्य की चेतना अमरता है, सुरभि है, श्रद्धा है। यह दीपिका ज्योतिर्मय हो। इस घटिका से अमृत बरसे। अमृत से रसानन्द की प्राप्ति हो। यही समालोचना से सृष्टि चाहती है।

———•○•———

हिन्दी में गीति काव्य

छटपटाते हुए श्वासो की लहरती हुई सूक्ष्म और पूर्ण गति 'लीरिक' के लालित्य मे प्रकट होती है। अतल आँसुओ की ध्वनि गीत है। जीवन जब मचलता है तो गीत निकलते हैं। कवि की कलम की सफलता गीति ही है।

अनुभूति और सौन्दर्य की ध्वनि गीत की गति है। सुन्दर प्रत्येक के लिये सुन्दर है। सौन्दर्य स्वयम् में परिपूर्ण है। उसमे प्रकाश होता है। वह किसी विशेष की आँखो और हृदय के लिये ही सुन्दर नहीं होता। आकर्षक का ही दूसरा नाम सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य उन्मत्त बनाता है, कवि बनाता है और आनन्द देता है। आकर्षण की अनेक वस्तुएं है। प्रकृति मे आकर्षण है। यौवन मे तरंगें हैं। व्यक्ति समाज और समष्टि मे आह्लाद है। वस्तुतः साध्य का सौन्दर्य ही साधक की साधना और संगीत है। आराध्य की आराधना ही गीत है।

सौन्दर्य साधना का आनन्द ही गीति काव्य है। दूसरे शब्दो मे सौन्दर्य भावना ही कवियो की कला है। कला का केन्द्र केवल आँखो का विषय ही नही होता, भावनाओं की भव्यता भी होती है। इस कला की सुन्दर शैली गीतात्मक है। इस सौन्दर्य का अनुभवी हृदय है। यह हृदय ही गीति काव्यो का स्वरूप है। प्रेम भरे गम्भीर हृदय और प्यास भरी बरसाती आँखों से ही गीति काव्य का जन्म होता है।

हिन्दी मे गीति काव्य की परम्परा प्राचीनतम नहीं है। काव्य गेय तो था पर गीति काव्य नहीं। कारण यह है कि हिन्दी मे बहुत कुछ संस्कृत का है, और संस्कृत मे अधिकांश काव्य वर्ण वृत्त छन्दो मे लिखा

गया है। वैसे तो "गीत गोविन्द" आदि गीति काव्य भी हैं। एवं वर्णिक छन्दो में लिखे काव्य की स्वर लहरी के बराबर किसी स्वर की गति तैरती नही चलती। अलौकिक आनन्द होता है उनमें। बड़ा मिठास होता है उच्चारण में। पूर्ण पाण्डित्य छलकता है। लेकिन वर्तमान के सदृश हृदय की प्रधानता प्रत्यक्ष नही होती थी।

हिन्दी काव्य का शैशव शुरू हुआ। अपभ्रंश का तोतला काव्य प्रिय लगता रहा। वीर काव्य की रासो परम्परा ने मुँह दिखा कर घूंघट खींच लिया।

'विद्यापति' के अद्भुत माधुर्य ने शृंगारिक छटा दिखाई। और कहना चाहिये कि हिन्दी में कवि विद्यापति से ही गीति काव्य का चलन शुरू होता है। मैथिली भाषा के मधुर कवि विद्यापति की सरस वाणी सुनिये—

कालि कहल पिय साँझहि रे, जाइबि मइँ मारू देस।
मोए अभागिलि नहि जानल रे, संग जइतवे जोगिनि वेस।
हिरदय वड दारुन रे, प्रिया बिनु बिहरि न जाइ।
एक सयन सखि सूतल रे, अछल वलभ निसि भोर।
न जानल कत खन तजि गेल रे, विछुरल चकवा जोर।
सूनि सेज पिय सालइ रे, पिय बिनु घर मोए आजि।
बिनती करहुँ सुसहेलिनि रे, मोहि देहि अगिहर साजि।
विद्यापति कवि गावल रे, आवि मिलति पिय तोर।
'लखिमा देइ' वर नागर रे, राय सिव सिंह नहि भोर।

भक्ति भावनाओं की बाँसुरी बजी। इस बाँसुरी का स्वर तल्लीनता से निकला। यह तल्लीनता ही काव्य की पूर्णता के रूप में प्रकट हुई। काव्य की भूमि पर तुलसी, सूर, मीरा आदि के चरण चमके। सूर की वात्सल्य भावना, तुलसी की भक्ति भावना और मीरा की प्रेम भावना गीति काव्य के रूप मे फूट पडी। उपास्य के अनन्त उपासक तुलसी के हृदय से—

राम सो बड़ो है कौन मो सो कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन मो सो कौन खोटो—

इन भावनाओं के साथ "विनय पत्रिका" फूट पडी। सौन्दर्य शील और शक्ति के स्वरूप के प्रति वे स्वयम् को भूल कर गाते रहे। "गीतावली" के प्रत्येक पद में वे स्वयम् बोल उठे :—

जौ हौ मातुमते महँ ह्वै हौ।
तौ जननी जग मे या मुख की कहाँ कालिमा ध्वै हौं ?
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि कौन मानि है साँची ?
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिषन्ह बाँची।

× × × ×

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै, दुलराइ, मल्हावै, जोइ सोई कछु गावै।
मेरे लाल की आव निंदरिया, काहे न कान्ह सुवावै॥

और सूरदास के वात्सल्य पदों में तो गीति काव्य का स्वरूप ही प्रत्यक्ष हो गया। वे साक्षात् सितार से बोलते रहे। उनके शृंगारिक पद अमूल्य है। उनका वात्सल्य रस वेजोड़ है। रसना के इतिहास मे वात्सल्य का ऐसा आनन्द कहीं नही। सूर के गीत सुन्दर शिशु है जिन्हे गोद मे खिलाने को सब ललचाये रहते है। देखिये:—

खेलत मे को काको गोसैयाँ ?
जाँति पाँति हम ते कछु नाहि, न बसत तुम्हारी छैयाँ।

× × × ×

देख री हरि के चंचल नैन।
खंजन, मीन, मृगज चपलाई नहिं पट तर इक सैन॥

× × × ×

करि ल्यौ नारी हरि! आपनि गैया।

× × ×

पिया बिनु साँपिनि काली रात।

× × ×

मेरे नैन विरह की बेल बई।

× × ×

निशि दिन बरसत नैन हमारे।

× × ×

मुरली तऊ गोपालहि भावति।

× × ×

एहि बेरियां बन तें चलि आवत।
दूरहि तें वह बेनु अधर धरि बारम्बार बजावति।

× × ×

मधुबन! तुम कत रहत हरे?
विरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे?
तुम हो निलज, लाज नहि तुमको, फिर सिर पुहुप धरे।

× × × ×

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै, बूझति सांच, न हांसी॥

सूर की सरसता के साथ ही साथ हम 'मीरा' का माधुर्य भी देखते है। सच्ची लगन का सच्चा अमृत इन गीतकारों के हृदय से निकला। अनुभूतियों का अलौकिक आनन्द इन नैसर्गिक नेत्रों से छलक कर गीति काव्य कहलाने लगा। महामहिमामयी मीरा की अनुभूति, भक्ति और आनन्द भरी अभिव्यक्ति सुनिये :—

बसो मेरे नैनन मे नँदलाल!
मोहनि मूरति, साँवरि सूरति, नैना बने रसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल अरुन तिलक दिये भाल।
अधर सुधा रस मुरली राजति, उर बैजंती माल।
छुद्र घण्टिका कटि तट शोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्तवछल गोपाल।

× × × ×

मन रे ! परसि हरि के चरन !

× × ×

म्हाने चाकर राखो जी !

यही नही ब्रजभाषा मे जितना काव्य है वह सभी प्राय. गीतात्मक है। भक्ति भावनाओं से भरपूर काव्य अधिकांश गीतो मे हो है। देखिये.—

मो मन गिरधर छवि पै अटक्यो।
ललित त्रिभंग चाल पै चलि कै चिबुक चारु गड़ि ठटक्यो।
सजल श्याम-घन-बरन लीन ह्वै फिर चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास किये प्रान निछावर यह तन जग सिर पटक्यो।

—कृष्णदास

कहा करौ बैकुंठहि जाय।
जहँ नहि नंद, जहाँ न जसोदा, नहि जहँ गोपी ग्वाल न गाय।
जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल और नही कदमन की छाय।
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय॥

—परमानन्द दास

तुम नीके दुहि जानत गैया।

—कुम्भनदास

जसोदा ! कहा कहौ हौ बात !
तुम्हरे सुत के करतब मोपै कहत कहे नहिं जात।

—चतुर्भुजदास

रहौ कोउ काहू मनहि दिये।
मेरे प्राननाथ श्री स्यामा सपथ करौ तिन छिए।

—हित हरिवंश

सखी हौ स्याम रंग रँगी।
देखि बिकाय गई वह मूरति, सूरत माहि पगी॥

—गदाधर भट्ट

हुतो रस रसिकन को आधार।
बिन हरिवंसहि सरस रीति को कापै चलिहै भार॥
—व्यास जी

इस प्रकार भक्ति काल की कोमल भावनायें गीति प्रधान हैं। कुछ नमूने आपने देखे। ये गीतात्मक शैली के प्रेमपूर्ण उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त भक्ति और रीति काल में अन्य छन्दों मे भी गेय अनुभूतियाँ हैं। रसखान की सरसता अलौकिक है। चार चार पंक्तियों की सवैयों में हृदय का अलौकिक आनन्द उछला है। मेरे विचार से गीत वही है जिस मे अनुभूति और गति है। जिस छोटी सी गेय ध्वनि मे पूर्ण अनुभूति साकार है वही गीत है।

गीति काव्य भक्ति काल में भव्य रहा, रीति काल मे रेंगने लगा। वह काव्य की भूमि से लक्षण की भूमि पर चलने लगा। कुछ भावनायें गेय अवश्य रहीं, किन्तु अधिकाश शब्द जाल और रीति ग्रन्थों मे उलझ गई। माधुर्य हृदय से हट गया। प्रासप्रियता कानों को मुग्ध करने लगी। शाब्दिक सौन्दर्य मे मनोहर ब्रजभाषा की रीत्यात्मक बाँसुरी पर खूब झूमे। बड़ा आनन्द आया उस में।

धीरे धीरे युग बदला। मगधी और मैथिली भाषा करवट बदल कर आगे बढी। चार सौ वर्ष तक दबी हुई चिनगारी चुनौती दे कर उठी। समय ने टूटे हुए दीपक को बनाया। वह ज्योति लेकर जागा। शक्ति और प्रतिभा से सम्पन्न खडी बोली खडी हो गई। राष्ट्र भाषा के आसन पर आसीन खडी बोली का प्रभुत्व प्रदीप्त हुआ। वह अनेकों भाषाओं की सम्राज्ञी बनी। उसके स्वर मे हर बात साकार होकर सामने आई।

ब्रज भाषा मन्दिरो मे स्थापित हुई। वह उपासना की मूर्ति बन गई। उस पर चढ़े श्रद्धा के फूलों से फूटी हुई सुरभि शाश्वत सुन्दर बनी।

ब्रज भाषा को प्यार करती हुई खडी बोली गूंजी। सौन्दर्य भावनाओ का अद्भुत काव्य इस में मुखर हुआ। प्रकृति अनुभूति और चेतना का आनन्द गीतों में गूंजा। कवि विभोर होकर 'लीरिक' लिखने लगा।

लेकिन खडी बोली मे 'लीरिक' लिखने की गति छायावादी और रह-

स्यवादी रचनाओं के साथ होती है। द्विवेदी काल में कविता ने करवट बदली। कविता छिछोरेपन को छोड गम्भीर हुई। प्रसाद, पन्त और निराला की अभिव्यक्ति गीतों का लालित्य लेकर निकली। नयी शैलियों मे, नयी भाषा मे अनुभूतियो के गीत सुनाई दिये। दर्शन, प्रकृति, गहरी अनुभूतियों के अनुभवी कवितापति 'प्रसाद' ने कामायनी मे गाया—

तुमुल कोलाहल कलह मे—
मैं मलय की बात रे मन!

विकल होकर नित्य चंचल,
खोजती जब नींद के पल,
चेतना थक सी रही तब,
मैं मलय की बात रे मन!

× × ×

यौवन! तेरी चंचल छाया।
इसमे वैठ घूँट भर पीलूँ, जो रस तू है लाया।

—(ध्रुवस्वामिनी)

'प्रसाद' की अलौकिकता के आनन्द भरे गीत गूंजते रहे। प्रकृति सुकुमार मधुर कवि 'पन्त' ने गाया—

प्रिये, प्राणों की प्राण!
न जाने किस गृह में अनजान,
छिपी हो तुम, स्वर्गीय-विधान!
नवल-कलिकाओं की सी वाण,
बाल-रति सी अनुपम असमान—
न जाने, कौन, कहाँ, अनजान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!

× × ×

स्वप्नों के यौवन मे भर दो, हे मेरा मन।
शोभा की ज्वाला में लिपटा मेरा जीवन।

मेरे भावो के सतरँग स्तर
बाँधें स्वर्ग धरा का अन्तर
जीवन की आकुल लहरों पर
ध्यानस्थित हो मेरा आसन !

अमर स्पर्श से खोलो हे उर का वातायन ।
प्राणो के सौरभ से पुलकित कर मेरा तन !

—'पन्त'

प्रकृति की रमणीयता मे 'पन्त' गाते रहे और दार्शनिक अनुभूतियो मे 'निराला' की स्वर लहरी छिडी । अपनी नयी अदा मे इस अद्भुत कवि ने गाया —

जग का एक देखा तार ।
कण्ठ अगणित, देह सप्तक,
मधुर स्वर झङ्कार ।
× × ×

पावन करो नयन !
रश्मि, नभ--नील--पर,
सतत शत रूप धर,
विश्व--छवि में उतर,
लघु--कर करो चयन !

प्रतनु, शरदिन्दु--वर,
पद्म--जल-विन्दु पर,
स्वप्न-जागृति सुघर,
दु ख-निशि करो शयन !

—निराला

यही नही न जाने कितना गाया इस अनोखे ने ! इस निराले दार्शनिक की लीला विचित्र है ! और इसी चेतना में पीडा की गहराई लेकर महादेवी गा उठी —

प्रिय सुधि भूले री, मैं पथ भूली !

मेरे ही मृदु उर मे हँस वस,
श्वासो मे भर मादक मधु-रस,
लघु कलिका के चल परिमल से
वे नभ छाये री, मैं वन फूली !

प्रिय सुधि भूले री, मै पथ भूली !

—महादेवी

वास्तव मे महादेवी के गीत गीत हैं। गीत लिखने के इस काल में प्राचीन परिपाटी के नये कवि गुप्त जी भी गीत लिखे बिना न रह सके। मुक्तक गीतो के अतिरिक्त 'कुणाल गीत' में उनका गीत देखिये—

हृदय ! तू दोनो ओर निहार।
तनय सदयता से ही माँ का दिया दण्ड स्वीकार।
वे अबला हैं और प्रवल हैं ईर्ष्या द्वेष विकार।
नही पुनीता प्रजावती सब जीता है संसार।
सिद्ध हुआ कैकेयी से भी उनका हृदय उदार।
मिला राम से तुझे अधिक ही बाह्य विषय विकार।
हृदय ! तू दोनों ओर निहार।

—मैथली शरण गुप्त

गीतो के इस गेय युग मे हम विचारक गीतकार रामकुमार वर्मा के विशाल हृदय और प्राण भरे गीतों से अभंगुर आनन्द पाते हैं। इनकी वाणी से बरसे हुए अमृत का स्वाद चखियेः—

एक दीपक किरण कण हूँ।
धूम्र जिसके क्रोड मे है, वह अनल अंगार हूँ मैं।
× × × ×
सिद्धि पाकर भी तपस्या साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक किरण कण हूँ।

—रामकुमार वर्मा

हिन्दी में गीति काव्य का प्रवाह बढ़ता ही रहा। उसकी लहरों की झनकार चारों ओर गूंजी। उसमें नवीनता आई, अपनापन प्रकट हुआ। और यही अपनापन लेकर 'बच्चन' की वाणी खुली। लीरिक का असली गुणानन्द हम बच्चन की अभिव्यक्ति में देखते हैं। अतल पीड़ा की अनुभूतियों से निकले हुए इनके अकृत्रिम गीत गेय हैं, स्वाभाविक हैं, अनश्वर हैं। गीत वस्तुत. लिखे ही बच्चन ने हैं। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह गीति प्रधान है। कुछ देखिये.—

तट पर है तरुवर एकाकी—
नौका है सागर में।
अन्तरिक्ष में खग एकाकी
तारा है अम्बर में।

भू पर घन, वारिधि में बेड़े,
नभ में उड़ खग मेला।
नर नारी से भरे जगत में,
कवि का हृदय अकेला।

× ×

आ, सोने से पहिले गालें,

जग में प्रात पुनः आयेगा,
सोया जाग नहीं पायेगा।
आँख मूंद लेने से पहिले आ जो कुछ कहना कह डालें।
आ सोने से पहिले गालें।

× ×

दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

× × ×

यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी जल्दी चलता है।

—बच्चन

इनके अतिरिक्त हंस कुमार तिवारी, मोहन लाल द्विवेदी, नरेन्द्र शर्मा, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, गिरिजा कुमार माथुर, चिरंजीत, अंचल

आदि-अनेक कवियो ने सौन्दर्य से परिपूर्ण गेय गीत लिखे है। निबन्ध मे सभी का पूरा उल्लेख नहीं किया जा सकता। अतः मुझे विश्वास है कि इस पीढी के जो कलाकार परिचय या विस्तृत उल्लेख से छूट गये हैं वे मुझे किसी विशेष की प्रभुता से प्रभावित न समझेंगे।

इन कलाकारो मे आज के वे तरुण कलाकार भी उल्लेखनीय है जिनकी ओर हिन्दी भाषा का भविष्य आशा से देख रहा है। नये कलाकारो के लिये एक नये इतिहास की आवश्यकता है। हिन्दी मे नये युवक कवि बहुत अच्छा लिखते हैं। उन के गीतो मे गुण हैं। यदि ये लिखते रहे तो निकट भविष्य मे शीघ्र ही ये बेजोड होगे। होगे ही नहीं, हैं भी बहुत कुछ। मेरा विचार है कि नये युग के नये कलाकारो का समालोचनात्मक इतिहास लिखूं। यदि सरस्वती की कृपा हुई तो लिखूंगा। एवं अपने किसी बन्धु का लिखा हुआ देखने की प्रतीक्षा में रहूँगा। हिन्दी साहित्य के कानन मे मुस्काते हुए नये फूलों की सुरभि साधना के वाहन पर उडेगी और निश्चित उडेगी।

सूत्र रूप से परिचय और इतिहास के पश्चात् गीति काव्य पर कुछ लिखने की प्रेरणा होती है। आज हम शीर्षक रहित हर रचना को गीत कहने लगे हैं। यह हमारे मस्तिष्क और हृदय की अस्पष्टता है। गीत बडी गम्भीर अनुभूति का आकार है। परिभाषा मे अतल पीडा की सूक्ष्म अभिव्यक्ति गीत है। प्रेम की मधुर गुञ्जार ही सुन्दर गीति है। गीत वह है जो हृदय मे निकला हो और हृदय को प्रभावित कर सके। गीत वह है जो निराशा के आँसुओ से भीगा हो। गीत वह है जो ग्लानि के पंक में पंकज की तरह खिला हो। गीत वह है जिसका आनन्द नश्वर होता ही नहीं। गीत की झनकार पर हृदय झूमते हैं। गीत मे पूरी बात होती है। लम्बी लम्बी कवितायें गीत नही होतीं। गीत कम से कम एक पंक्ति का और अधिक से अधिक सोलह पंक्तियों का होना चाहिये। इन से अधिक जितनी पंक्तियाँ बढती जाती हैं उतना ही गीत घटता जाता है। गीत मे पूर्णता होती है। यदि एक पंक्ति का कोई गीत है तो उसके आगे रक्खी हुई दूसरी पंक्ति शूल सी चुभेगी। सच्चा-गीत तभी निकलता है जब निराशा की अनुभूति छटपटा कर गाती

है, जब स्वप्नों की राख उडाता हुआ कवि गाता है। गीत वही है जो अरमानों की चिता पर बैठ कर आँसुओं की वर्षा में लिखा गया हो, और जिसे प्रकृति भी गाती हो। सुनिये.—

(१)

सावन मे पतझड इस तरु पर, यह कैसी अनहोनी ?
छाया छोड गई क्यों इसको ? कहाँ गई मृगछौनी ?

किस छाया की स्मृति अम्बर मे वन कर छाई बदली।
आँखों की बरसात बन गई प्रिय की प्यासी पगली॥
धधक न जाना कहीं काठ तुम, उर में आग भरी है।
तुम विहाग हो शून्य प्रकृति के, कविता प्रिया परी है॥

मुझ से सीखो इसी शून्य में तुम भी कविता बोनी।
सावन में पतझड इस तरु पर, यह कैसी अनहोनी ?

(२)

चिता जलती है, किसी के श्वास जलते हैं।
ढूँढने किसको कहाँ पग प्राण चलते हैं ?

जब कभी मुस्कान पल को भाव मे देखी।
खोल कर मुट्ठी कभी जब चाव मे देखी॥
राख हँस कर उड गई जलती रही बत्ती।
जलती रही, कटती रही, ढलती रही बत्ती॥

चाँद छूने को सदा तारे मचलते हैं।
चिता जलती है, किसी के श्वास जलते हैं॥

सरस्वती की नयी आराधना साधना के गीति काव्य और भावना के भव्य फलों से होगी। गीत लिखने की रुचि इधर बढ़ती जा रही है। चलचित्रों के मनचले गीतो मे जनमोहक माधुर्य तो है पर गीत का प्राकृतिक सौन्दर्य नहीं। कुछ गीतो मे जान भी होती है। यदि चलचित्रों मे अच्छे गीतो का स्थान हो तो गीति काव्य जन जन में पहुंच वास्तविक कला की प्रगति का माध्यम सिद्ध हो सकता है। चलचित्रों को चाहिये कि आर्थिक उद्देश्य के साथ कलात्मक उद्देश्य भी रहे। आशा है नये युग के काव्य की नयी विशेषता गीति होगी।

गणपति और गणराज्य

गणपति ने कहा—

आज तू गणराज्य की हृदय-सम्राज्ञी बनी है कलम ! ले राजमुकुट पहिन ! प्रकृति के परिधानों से सज ! भाषा के अलंकारों से जगमगा ! कुंकुम और महँदी चढ़ाकर नये राष्ट्र में नयी चेतना भर ! सुनादे वे अमृत भरे गीत जिन को सुनकर मृतक भी जी उठें। छेड़ दे वह अद्‌भुत तान जिससे हिमालय की स्थिरता तथा गङ्गा की गति गा कर गणराज्य की गरिमा बन जाये। बजा दे वह बाँसुरी जिससे हृदय और बुद्धि का संतुलन चेतना के स्वर मे वाणी पर फूल चढा चरणामृत पिये और पिलाये। अलाप दे वह राग जिससे समतल पर दीपक लेकर सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की आरती उतार सके।

जीवन निर्झरणी ! आज तेरी कला का चमत्कार चाहिये। यदि आज भी तू ललित कलाओं की पूर्णता प्रकट न कर सकी तो गणेश को लज्जा आयेगी। हृदय-हंसिनी ! आज तू शुष्क भूमि पर आँसुओं को मोती बनाकर बरसादे। तू गणराज्य की सुष्मा है तूलिके ! तू अनुभूति की सुहाग-बिन्दी है मृदुले ! तेरी ही मसि से न्याय की नयी तस्वीर बनती है नीतिके ! तेरी ही रसना से रस बरसता है रसवन्ती ! तू क्या नही कर सकती लेखनी !

कलमः— लज्जित न करो गणपति ! गणराज्य का श्रीगणेश शाश्वत शुभ हो, यही मेरी कामना है शिवपुत्र ! पर गणराज्य की सम्राज्ञी कह कर मेरा उपहास मत करो लेखक ! उपासिका कभी शासिका नही होती। चरणों के आँसू, मुकुट के मोती नहीं बन सकते मनहर ! मेरे चिरे हुए हृदय से रंग वह कर जो चित्र बनते हैं उन्हें शासिका की श्वासें कह

कर विकृत मत करो चित्रकार ! भाषा और प्रकृति मे ढली हुई मन्थन-मदिरा भोगियों के भोग की सामग्री मात्र ही तो है। कलम की करामात बालकों की क्रीडा कन्दुक की कहानी ही तो है रसात्मक ! तू मुझे प्यार करता है कलाकार ! मैं तुझे अच्छी लगती हूं। पर तू गणराज्य की गर्वित ग्रीवा को नहीं जानता ? उसके हृदय में मेरा स्थान पत्थर पर गिरे आँसू से भी तुच्छ है, और तुझे भी वह दुर्गन्धित श्रमकण कह कर पूंछ फेंकता है। उसे तेरे गुलाब के फूलों मे दुर्गन्ध आती है। वह विलायती कागज के फूलों पर दीवाना है। क्या कभी तूने उसे अपनी कल्पना के निकट देखा है ? और देख, वह विलायत के राजमहल मे दीपक बन कर जल रहा है। उसे महल की मंजुता लुभाती है, कलम की कला नहीं।

सावधान शलभ ! यदि तू पागल बनकर उस दीपक की ओर लपका तो वह तुझे जला कर राख कर देगा। वह तो राजमहल का प्रकाश है प्राण ! झोंपडी के झनकार ! तुझे उसमे आशा करनी व्यर्थ है। रेशम की साडी के सामने खद्दर की पवित्रता को पसन्द करने वाला गाँधी मर चुका है। आज किसान को कलम को केवल आंसू बहाने का सहारा है। उसे सम्राज्ञी समझकर स्वयम् को भुलावे में क्यों डालते हो ? गणपति ! कलम का धन अभंगुर अवश्य है पर तेरे लिये प्यास ही है। बोलो, तुम्हारी कलम ने कब तुम्हारे आँसू पूछे ? कब तुम्हें शान्ति की शैया पर सुलाया ? कब कब तुम्हारे झुलसते हुए जीवन में आशा और प्यास की पूर्ति की ?

गणपति.—यह क्या कहती हो स्वामिनी ! क्या नहीं दिया कलम ने मुझे ! करुणा, कल्पना, अनुभूति और स्नेह की अभिव्यक्ति कलम ही से तो मिली है। सत्यं शिवं सुन्दरं कलम ही तो प्रकट करती है अमृते ! यदि कलम न होती तो कौन आँसुओं को मोतियों के मूल्य मे तोलता पगली ! लेखनी ही तो कलाकार की लीलाओं को लिखती है। दु:खो का मूल्य सुखों की तराजू मे तोलने वाला व्यापारी हार से सौदा करता है। जीवन की जीत पीड़ाओं को मुस्कान मानने मे ही है। निर्धनता के धन की गरिमा धनिकों की आँखें नहीं पहिचानती। प्रेम के मोतियों

का मूल्य विरह की वेदना मे ही है लेखनी ! तू तड़प को अभिशाप मान कर मचलना क्यो चाहती है ? तेरी शक्ति प्रत्येक की परिभाषा है । तू ललकार की लालिमा है । तेरी सीमा में प्रलय और सृजन की हुंकार है । उस हुंकार को प्रलयार्थ छेड़ना संयम एवं सहिष्णुता पर अभियान करना है ।

कलमः—क्यों मन को समझाने का प्रयत्न करते हो ? केवल कल्पना से ही भूख नहीं मिटती । दर्शन मात्र से तृप्ति नहीं होती, प्यास बढ़ती है। संकल्पो के संसार मे भावना मात्र से ही सिद्धि नहीं होती । क्या अच्छा नहीं होता यदि तुम मुझे तोड़ फोड़ कर लक्ष्मी के मन्दिर में माला जपने लगते ? वहाँ कम से कम तुम्हारी स्थिति उस अनाथ बालक की सी तो नहीं बनती जिसके लिये कही अनाथालय भी नहीं । गणराज्य के गणपति ! तुम्हारी गरिमा सिद्धहस्त है । तुम्हारे गुरु बृहस्पति हैं । पर यह मत भूलो कि वितरक आज वे हैं जो देख नही सकते । प्रसाद की प्रतीक्षा मे फैला हुआ तुम्हारा हाथ आँसू ही पूछने के लिये है । इसलिये मैं फिर कहती हूँ कि मुझे बनो में पैदा होकर बनो की धूलि ही में मिल जाने दिया करो । कलाकार मुझे घिसा कर स्वयम् घिसता रहता है । साहित्य सृजन से उसे कोमल करुणा के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता ।

गणपतिः—अमृत का तिरस्कार मत करो कलम ! ज्ञान विज्ञान जो कुछ है वह सब कलम की कला मे ही व्यक्त है । सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य मे भारत की सरस्वती को निराश नहीं होना चाहिये ।

कलमः—निराशा की निशा मे चमकने वाले चाँद ! धन्य है तेरी चाह ! कल्पना मे ही सन्तोष की श्वास लेने वाले गणेश ! गणराज्य के भावी स्वप्नो मे सुख की नींद टटोल कर बाँटता रह ! टूटी हुई कलम को फिर से बना ! चीर चाकू की तेज नोक से कलम का हृदय ! एवं लिख लहरो पर अमिट अक्षर !

वाणी के मन्दिर मे गणेश ने लेखनी उठाई । विराट के अन्तर ने बोलना शुरू किया और लेखनी लिखने लगी ।

व्यष्टि से समष्टि और समष्टि से व्यष्टि है। प्रगति की पगडण्डियों पर जन ने छाया और फलों के लिये जो वृक्ष खड़े किये हैं, उनका मूल एवम् इतिहास पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष नहीं। अतीत को प्रत्यक्ष देखने की दिव्य दृष्टि कभी थी, पर आज की आँखें तो प्रत्यक्ष भी धुँधला ही देखती हैं। न जाने कितनी यवनिकाएं अतीत के दृश्यों पर आच्छादित हैं। मानव के विकास का मूल एवं इतिहास भी इन्हीं यवनिकाओं की ओट मे है। धूलि के गर्भ में अतीत की अनेकों स्मृतियाँ अपने परिवर्तित रूप मे सोई हुई हैं।

पर मानव के विकास के जो कुछ उलटते पुलटते पृष्ठ हम बुद्धि और अनुभूति के संतुलन से देखते हैं, उन से प्रत्यक्ष न सही किन्तु छाया के दर्शन अवश्य पा लेते हैं। मनुष्य ने अपने सुख, विकास एवं व्यापकता के लिये व्यवस्था निर्मित की होगी। यह व्यवस्थित प्रगति व्यक्ति से सामूहिक स्वरूप मे प्रकट हो जन जागृति की बेल बनी होगी, जिस बेल पर फूटनेवाली शाखाओं में तरह तरह के फल फूल खिले होंगे। मानव उन बेलों का माली ही मानना चाहिये।

जन के विकास की पगडण्डी पर चलनेवाले राही को स्थान स्थान पर छाया की आवश्यकता है। अतः उसके पथ के प्रथम पेड़ को हम परिवार कह सकने हैं। विश्राम के अगले वृक्ष को पड़ौस और पड़ौस से आगे के तरु को गाँव कह सकते हैं। गाँव के बाद के वृक्ष को जनपद कह सकते हैं। इसी प्रकार जन की मंजिल का वह बड़ा देवदारु जिसकी छाया मे व्यष्टि समष्टि का रूप ले लेती है, केन्द्रीय सत्ता के रूप में प्रकट होता है! उस विशाल देवदारु को सींचने के लिये हम सब माली हैं तथा उस पर खिलने वाले फल फूलों के हम सब समान अधिकारी हैं।

विचार विनिमय से सिद्ध हुआ कि राज्य जनता की संगठित केन्द्रीय शक्ति का नाम है। किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति को हम राज्य नहीं कह सकने। राज्य जनता की निधि है। उसके सिंहासन पर विराजमान व्यक्ति जनता की भावनाओं का स्वरूप है।

समय की गति मे गर्वीले पैरो ने जनता की भावनाओ पर पैर रक्खा होगा और अधिनायकवाद (Dictatorship) का झंडा ऊँचा उठ राजा के पग पूजन के गीत गुँजाने लगा होगा। यही तो अधिनायकवाद की सृष्टि है।

यद्यपि इतिहास के पन्नो पर राजाओ की अनेकों कहानियाँ हैं, सत्युग, द्वापर और त्रेता मे भी हम राजा को सत्यवादी तो अवश्य पाते हैं पर जनता का निर्वाचित शासक नहीं देखते। वह वंश परम्परा के अनुसार होता था। चाहे वह जनता की भावनाओ से पृथक् नही जाता था, पर जनता की आज्ञा से सिहासनारूढ सम्राट् के दर्शन इतिहास मे प्रत्यक्ष नहीं होते। हाँ, मूलभूत प्रवृत्ति निस्सन्देह जनता के राजा की ही रही होगी। तभी तो हम आज भी जन–जन के मुँह से रामराज्य की प्रशंसा सुनते हैं।

विस्तार में वातचक्र से बच अब हम प्रत्यक्ष काल की राज्य प्रणालियो पर आते हैं। आज तानाशाही और प्रजातन्त्र की चर्चा विशेष रूप से होती है। इन दो रीतियों से पृथक् पृथक् राज्य की व्यवस्था है। इटली, जर्मनी और जापान में तानाशाही या राजतन्त्र का ही ज़ोर रहा। किन्तु एशिया और योरुप के अधिक राष्ट्रो मे प्रजातन्त्र ही है। सच्चे रूप मे हम इङ्गलैंड को भी गणराज्य नहीं कह सकते। क्योंकि वहाँ किंग—राज्य का सर्वोच्चाधिकारी—वंशगत परम्परा के अनुसार सिहासन पर बैठता है। हाँ, अमेरिका शुद्ध रूप से गणराज्य का आदर्श है। वहाँ जनता के मत से ही व्यक्ति प्रधान पद का आसन ग्रहण करता है।

जनता के स्वरूप बापू ने गत वर्षों की सत्य और अहिसामयी क्रान्ति के बाद भारत को स्वतन्त्रता के शिवम् सिंहासन पर आसीन किया। स्वतन्त्र भारत का स्वरूप जनता का मूर्त्त रूप है। इसकी व्यवस्था का जो चित्र निर्माण किया गया है, वह 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' (Sovereign Democratic Republic) है। स्वतन्त्र भारत के नये विधान के निर्माणानुसार २६ जनवरी सन् १९५० को २६ जनवरी सन् १९३० की स्वातन्त्र्य प्रतिज्ञा के फलस्वरूप गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति के पद पर सश्रद्धा विभूषित किये गये। एवम्

'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' जनता की सामूहिक भावनाओं के रूप मे उदित हुआ। आज भारत मे जनता पर जनता का शासन है। उसकी स्वतन्त्रता उसकी इच्छाओं की खिलती खिलाती वाटिका है।

भारत के संविधान का मूलाधार प्रतिज्ञापत्र इस प्रकार है–"हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने तथा उस के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, न्याय, विचार, अभिव्यक्ति की समता प्राप्त कराने तथा उन सब मे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुरक्षित कराने वाली बन्धुता बढाने के लिये दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं"

इस आशय में भारत का भावी विधान आधारभूत है, जो ९ दिसम्बर सन् १९४६ से भारतीय विधान परिषद् के ३०८ सदस्यो द्वारा रचा जा कर २६ जनवरी सन् १९५० को घोषित किया गया तथा जिस विधान के निर्माण मे ६३९६७२९ रुपये व्यय हुए। भारतीय संविधान ३०९ धाराओ और आठ परिशिष्टो से युक्त २५० पृष्ठों का ग्रन्थ संसार का कदाचित् सब से बडा विधान है।

भारत का नया शासन विधान और उस के अनुसार स्वयं को स्वतन्त्र सार्वभौम प्रजातन्त्र घोषित करना हमारे इस प्राचीन राष्ट्र के इतिहास में पहिले नहीं दीखता। प्राचीन सत्ता जहाँ तक हम पढ पाये हैं, राजतन्त्रात्मक ही रही। किन्तु यह जनराज्य की प्रथम किरण मुस्करा कर नयी सृष्टि की सुन्दरता अभिव्यक्त करती प्रतीत होती है। पहिली प्रथा पेड की शिखा से सींचने की थी, जिस से फल की कल्पना पागलपन ही माननी चाहिये। किन्तु प्रजातन्त्र के विधानानुसार यह भूमि जनता के जल से हरी भरी होने के लक्षण देखती है।

गणराज्य की स्थापना तो हो गई पर इस की सफलता विधान के पृष्ठों पर ही सन्तोषजनक नहीं। जनता के राज्य का स्वाद तभी है जब जनता जनराज्य के महत्व को पहिचानने योग्य हो। वह अपने मत का मूल्य समझ सके। उसके जीवन का माध्यम उस की शिक्षा हो। उस मे कर्त्तव्य परायणता

की भावनायें हों। गणराज्य का सौरभमय आस्वादन करने के लिये हमें नागरिकता का स्तर ऊँचा उठाना होगा। देश का सच्चा नागरिक वही है जो राष्ट्र के धरातल को आंगिक उपायों द्वारा ऊँचा उठा सके। पर हम देखते हैं कि इस देश के अधिक निवासी अशिक्षित हैं। हमारी आँखे और हृदय उन नायकों की ओर लगी हुई हैं जिन्होंने जनराज्य की स्थापना की है।

अभी समय छाया में विश्राम करने का नहीं। मंज़िल अभी दूर है। पैरों की गति अभी अधूरी आशा का आँचल पकड़े प्रगति के पथ पर है। वे सुनहरी स्वप्न जिन में जनता के सुखों के दृश्य हैं, अभी दूर पर झिलमिलाते दिखाई देते हैं। और हम उन स्वप्नों मे ही खो से गये हैं।

जनता के राज्य मे जिन सुखों की कल्पना जन करता है, उनके लिये कर्मण्यता, बलिदान, सेवा, संयम, एवम् देशभक्ति की पूर्ण भावनायें चाहियें। यदि यह सब नहीं कर सके तो गणराज्य केवल नाममात्र के लिये ही मानना चाहिये। प्रत्येक शिक्षित को प्रतिज्ञा करनी होगी कि कम से कम पाँच अशिक्षितों को शिक्षित बनाऊँगा। हर व्यक्ति को उत्पादन के लिये किसान बनना होगा। नारी जाति की दयनीय दशा को क्रिया की साक्षात् गति में बदलना होगा। नागरिकता की उच्चतम भावनाओं से भारत भूमि को ही स्वर्ग बनाने का संकल्प किये बिना जनराज्य का स्वप्न दूर है। अनुशासन, सत्य, श्रद्धा के बिना विकास असम्भव है। जिनकी धरती है उनके श्रम के विना प्रजातन्त्र के फूल नहीं खिल सकते हैं। भोगी मत वनो, कर्मण्य वनो।

गति प्रगति को देखते हुए आशा का स्वर्णिम प्रकाश दूर नहीं। लक्ष्य की वह लालिमा जिस में हम सब की अरुणाई व्याप्त है, रोली लिये प्रतीक्षा कर रही है। पूर्णिमा का उज्जवल प्रकाश पथिकों के पैर पूजने के लिये उत्सुक है। यदि पैर न रुके तो समस्त सिद्धियाँ चरणार्चना करेंगी। कृषक के श्रमकणों से ही मोती पैदा होते हैं। भारत कोटि-कोटि करों से मोतियों की यह मंगलमयी माला पहिनने की प्रतीक्षा में है।

क्या जनता के सिंहासन पर सुशोभित भारत के कंठ में मंगलमयी माला दमकेगी ?

आशा ने उत्तर दियाः—अवश्य, लेकिन लेखनी की करुण स्याही के सहारे से। जब कलम के गीत छिड़ते हैं तो पत्थर हृदय भी परिवर्तित हो जाते हैं। भाषा साहित्य और श्रम के बिना प्रगति कल्पना है। प्रकृति का माध्यम लेखनी है।

कलम—लेकिन लेखनी का माध्यम ··· ·······?

गणपति— गणराज्य का गौरव।

काव्य में सौन्दर्य भावना

सौन्दर्य मे अमृत और आनन्द है, गुण और प्रसाद है, ओज और माधुर्य है। उस अद्‌भुत कलाकार की कृति मे सौन्दर्य ही आकर्षण है। सौन्दर्य के प्रति मनुष्य का स्वाभाविक राग है। सौन्दर्य विलक्षण इन्द्र-जालिक है, जिसकी शक्ति अलौकिक है, जिसकी प्रेरणा नयी है, जिसकी गति निराली है।

सौन्दर्य की ओर मनुष्य दीपक पर शलभ के सदृश लपकता है। शलभ स्वयं सौन्दर्य-ज्योति पर जलता है। सुन्दरता से मनुष्य के स्वभाव का गठबन्धन है। ताजमहल का सौन्दर्य देखने दूर दूर से दुनिया आती है। जो भी बम्बई जाता है वह 'हैंगिग गार्डेन' देखना नहीं छोड़ता। ऐतिहासिक मन्दिरो और महलों के दर्शन करने दुनिया जाती है। संसार की सहाश्चर्य-जनक सुन्दर वास्तु मूर्तियो को देखने के लिये सभी लालायित रहते हैं।

चित्रों के सौन्दर्य पर मुग्ध मनुष्य के मुँह से सहसा निकल पड़ता है—वाह! बहुत सुन्दर! संगीत की कोई सुन्दर तान सुनकर हम झूमने लगते हैं। प्रकृति की रमणीयता पर हम मोहित होते हैं। सौन्दर्य की ओर आँखें निर्निमेष हो जाती हैं, मन ठहर जाता है, बुद्धि हार मानती है। सुन्दरता हृदय मे निवास कर कविता के रूप में प्रकट होती है। सौन्दर्य का ही दूसरा नाम काव्य है। वस्तुतः काव्य सौन्दर्य भावनाओं का प्रतीक है।

कविता मे सौन्दर्य कामिनी का है, हृदय का है, प्रतीको का है और प्रकृति का है।

कामिनी शब्द में ही कोमलता है। मानो कामिनी मधु की मूर्ति है। कामिनी की अँगडाई के इंगित पर ही कवि लिखता है। यह ज्योति-

मयी ही कवि की जागृति है। इसकी मादकता ही कवि की कला है। सौरभमयी सुन्दरी की कल्पना पर ही कवि की कलम चलती है। सुन्दरता की छवि मे अलौकिक छटा होती है। यौवन में केलि करती हुई कामिनी अधरो की प्यास होती है, प्राणों की गति होती है, आँखों की ज्योति होती है। शृंगार किये हुए जब कामिनी हंसिनी सी चलती है तो आँखो के बनाने का उद्देश्य पूरा हो जाता है और कवि कह उठता है :—

जब दर्पण मे देखी तुमने कर शृंगार रूप की झाँकी।
जिसने तुम्हे रचा उस विधि की सच कह दो क्या कीमत आँकी ?

बाला के बालों में बन्धन होते हैं, जो बरबस किसी का मन बाँध लेते हैं। बाला की आँखों में हाला होती है, जो मस्त बनाकर गीतों के रूप में बरसती है। कामिनी के कपोल कमल होते हैं, जिन पर मन मधुकर से झूमते ही रहते हैं। कामिनी का अंग अंग सुन्दर होता है। उसकी हर अदा से कविता बरसती है। जयशंकर प्रसाद ने सत्य ही कहा है—

अद्भुत वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते है।

और यह सुन्दरता ही कवि की छवि है। विधि की कला की सुन्दरता कामिनी है, जिस कामिनी की छवि कवि की छटा है। कवि तभी गाता है जब छवि की ओर भावना मचलती है। एक बार एक असाधारण सुन्दरी को देख कर मैने लिखा था—

दिव्ये ! तुम में दृश्य प्रदर्शन, तुम अदृश्य की मूर्ति कला हो।
तृपित, तड़ित, मुस्कान तुम्हारी, तुम अपूर्ण की पूर्ति कला हो॥

× × ×

सच कहता हूँ हर कम्पन मे दुखियों का सत्कार निहित है।
सच कहता हूँ हर पग ध्वनि मे वीणा की झनकार निहित है॥

सुन्दरता कविता की प्रेरणा है। शायद ही सुन्दरता का कोई ऐसा अंग शेष हो जिस पर कवि की भावना न मचली हो। किसी की बडी बडी सुन्दर आँखों ने प्रेरणा देकर एक बार मुझ से "आँखें" कविता लिखवाई थी, जिसकी दो पंक्तियाँ हैं—

नाच रहीं पुतलियाँ दृगों में या ये दो मधुकर मँडराये।
नीले रञ्जित नभ-नलिनों पर या ये दो पक्षी उड़ आये॥

और रीतिकाल के गागर में सागर कवि बिहारी की बहार तो गुदगुदी पैदा कर देती है। कामिनी सौन्दर्य पर उन्होंने बहुत सरल और मधुर लिखा है। सुन्दरी के अंग उन्हें खूब पिलाते हैं, ऐसी पिलाते हैं कि कविता उमडी पड़ती है। सुकुमार सौन्दर्य को देख कर वे कहते हैं—

भूषण भार सँभारि है क्यों यह तन सुकुमार?
सुधे पॉव न धरि परत शोभा ही के भार॥

और आँखो को देख कर वे गाते हैं:—

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट पट झीन।
मानहु उर सरिता विमल जल उछरत जुग मीन॥

सुन्दरी के अंगो के चित्र बिहारी ने खूब खींचे है। ये चित्र सौन्दर्य भावनाओ के प्रतीक हैं। इन चित्रों मे यथार्थ सौन्दर्य और शिक्षा है। बिहारी की सौन्दर्य भावना केवल कामिनी तक ही सीमित नही, उनकी सौन्दर्य भावना भक्ति भरी भी है। वे कहते हैं:—

शीश मुकुट कटि काछनी उर बैजंती माल।
या बानिक मो मन बसौ सदा बिहारी लाल॥

वे अपने आराध्य इष्ट कृष्ण को भी शृंगार सम्पन्न सौन्दर्य स्वरूप मे ही देखने को लालायित हैं।

वस्तु व्यंजना बिहारी की कलम से खूब हुई है। उनका उक्ति वैचित्र्य अलौकिक है। उनको सौन्दर्य भावना शब्दो में चित्र खींच देती है। देखिये:—

बत-रस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनि हँसै, देन कहै, नटि जाइ॥

सौन्दर्य की अतिशयोक्ति देखिये:—

पत्रा ही तिथि पाइए वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति 'पून्योई' रहै आनन-ओप-उजास॥
छाले परिबे के डरन सकै न हाथ छुवाइ।
झिझकति हियैं गुलाब कै झवा झवावति पाइ॥

यहाँ उर्दू की शायरी भी झूमने लगती है। और देखिये प्राकृतिक सौन्दर्य—

सघन कुञ्ज, छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥

वस्तुतः कामिनी के सौन्दर्य से प्रेरित सौन्दर्य भावना रीति काल में ही अधिक व्यक्त हुई है। भक्ति काल की सौन्दर्य भावना उपासनामयी थी। तुलसी की सौन्दर्य भावना राम की छवि लेकर प्रकट हुई। उनकी अभिव्यक्ति अलौकिक है। किन्तु किसी भी कवि की कविता कामिनी सौन्दर्य से शून्य नहीं और तुलसी ने तो कुछ छोड़ा ही नहीं। उनकी एक सौन्दर्य भावना देखिये.—

प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज-मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥

महाकवि तुलसी की प्रत्येक पंक्ति मर्यादित है। उनकी सौन्दर्य भावना पिता राम और माता सीतामयी है। उस से वासना की जागृति नही होती। भक्ति काल की सौन्दर्य भावना इस प्रकार आदर्शमयी है।

और रीति काल की सौन्दर्य भावना यथार्थवादी है। रीति काल का नायिका भेद और नख शिख वर्णन कामिनी के अंग स्पन्दनों पर अवलम्बित है। कुछ कवियों की सौन्दर्य भावना देखियेः—

कुन्दन को रँग फीको लगै, झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
आँखिन मे अलसानि, चितौन में मंजु बिलासन की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नही मतिराम लहे मुसकानि-मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई॥

—मतिराम

ऐसिय कुंज बनी छविपुंज रहै अलिगुंजत यो सुख लीजै।
नैन विसाल हिए बनमाल विलोकत रूप-सुधा भरि पीजै॥

—कुलपति मिश्र

डार द्रुम पलना, बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झँगूला सोहै तन छवि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी कीर बहरावैं देव,
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै॥

पूरित पराग सो उतारो करै राई लोन,
कंजकली-नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक वसंत, ताहि
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै॥

× × × × ×

सखी के सकोच, गुरु-सोच मृग लोचनि,
रिसानी पिय सों जो उन नेकु हँसि छुयो गात।

—देव

फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोबिंदै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पदमाकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी॥
छीनि पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय, "लला फिर आइयो खेलन होरी"।

—पद्माकर

देव, बिहारी और मतिराम का काव्य सौन्दर्य अद्भुत है। उनकी सौन्दर्य भावना नख शिख वर्णन में ही सीमित नहीं हुई। रीति काल के इन फूलों की सौन्दर्य-सुरभि प्रकृति की अभिव्यंजना है। इनकी सौन्दर्य भावना प्रकृति चित्रण में चमत्कृत हुई है। 'देव' की "कंजकली-नायिका लतानि सिर सारी दै" उक्ति अद्भुत प्राकृतिक और प्रतीकवादी है। रसखान का सौन्दर्य रस, रसलीन की सुन्दर सरसता अनुपम है। रसलीन के "अंगदर्पण" का यह दोहा—

अमिय, हलाहल, मद भरे, सेत, स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत जेहि चितवत इक बार॥

आँखों के सौन्दर्य और भावों पर झुमा देता है।

कुछ शब्दों में रीतिकाल की सौन्दर्य भावनायें अलंकारिक रहीं, शृंगारिक रहीं, प्रकृतिमयी रहीं, प्रतीक और नायिका की ध्वनियों में व्यक्त हुईं, राधा और कृष्ण की छवि पर छिटकीं। रीतिकाल की सौन्दर्य भावनाओं में मृदुलता है, माधुर्य है, और स्वाभाविकता है। रीतिकाल के चित्र चित्र हैं।

तुलनात्मक दृष्टि से भक्तिकाल की सौन्दर्य भावना भगवानमयी रही। उस काल के कवि की छवि राम और कृष्ण का सौन्दर्य लेकर निकली, तथा केशव आदि प्रकाण्ड कवियो ने सूर्य और सीता आदि के सौन्दर्य को कापालिक के खप्पर और अग्नि आदि की कर्कशता मे भी चित्रित किया। कहने का अर्थ यह है कि भक्तिकाल की सौन्दर्य भावना अधिक कोमल न रह कर उपासनामयी ही अधिक रही, और रीति काल की सौन्दर्य भावना कोमल, मधुमयी और कामिनी कलित रही। कवि नायिका के रूप पर खूब रीझे। मतिराम की भाषा में :—

केलि कै राति अघाने नही दिन ही मे लला पुनि घात लगाई।

पंक्ति के अनुसार कामिनी की कलाओ पर खूब थिरके। और —

आँखिन ते गिरे आँसू के बूँद, सुहास गयो उड़ि हंस की नाईं।

जैसी सौन्दर्य भावनाओ पर खूब ऊँचे उडे। संक्षेप मे रीतिकाल की सौन्दर्य भावना ऐसी लगती है मानो कोई बहुत सुन्दर कामिनी सम्पूर्ण शृंगार किये किसी निकुंज मे नयन नचाती हुई मनो को नचा रही है।

आधुनिक काल के कवियो की सौन्दर्य भावना प्रकृतिमयी है, कल्पनामयी है, हृदयरंजित है, गम्भीर अनुभूति भरी है, निराशा सम्पन्न है, कलात्मक है। अन्य रूप मे आज की सौन्दर्य भावना छायावादी है, रहस्यवादी है, यथार्थवादी है, प्रगतिवादी है। लेकिन समस्त भावनाओ का समावेश प्रकृति में ही हुआ है। कवि ने दार्शनिक चित्र खींचे तो प्रकृति मे, कवि ने कामिनी की तस्वीर खीची तो प्रकृति मे। अर्थात् आशा निराशा, रीझ खीझ आदि के जितने भी चित्र है वे सब प्रतीकवादी और प्रकृतिमय है। कवि ने जो कुछ कहा है प्रकृति मे घुल कर। कहा जा सकता है कि आज का कवि प्रकृति का चित्रकार है। कवि की सौन्दर्य भावना प्रकृति है।

प्रकृति मे पूर्णता है। प्रकृति का सौन्दर्य अनन्त है। अद्भुत प्रकृति मे आँखें निर्निमेष रहती हैं। कवि की सौन्दर्य भावनाओ मे सिन्धु का सौन्दर्य थिरकता है, सरिताओ की कलकल करती कलना मूर्त्त है, मेघो के मनहर चित्र तैरते हैं, रजनी की छवि छिटकती है, उषा की लालिमा का लालित्य छलकता है, ऋतुओं की रमणीयता रंजित रहती है।

प्रकृति प्रायः सभी कवियों की व्यंजना है। पर जयशंकर प्रसाद की प्राकृतिक सौन्दर्य भावना अनूठी ही नहीं, अनन्त है। कामायनी में "श्रद्धा" के सौन्दर्य के चित्र चमत्कार हैं। कवि की सौन्दर्य भावना अनन्त होकर अनन्त प्रकृति में साकार हुई है। प्रसाद की निराली विशेषता यह है कि जो अभिव्यक्ति महाकवि केशव की भाषा मे कविता न रही, वही अभिव्यक्ति प्रसाद की सौन्दर्य भावना से पूर्ण कविता हो गई। प्रसाद ने 'श्रद्धा' का सौन्दर्य दर्शाते हुए कहा है:—

आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम—बीच जब घिरते हों घनश्याम,
अरुण रवि मण्डल उनको भेद, दिखाई देता हो छविधाम।
या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग, फोड कर धधक रही हो कांत।
एक लघु ज्वालामुखी अचेत, माधवी रजनी मे अशांत॥

यहाँ प्रसाद की सौन्दर्य भावना आग की प्रचण्डता मे भी कोमल है। "फोड कर धधक रही हो कान्त" जैसी कर्कश ध्वनि भी केवल 'कान्त' शब्द से अद्भुत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति कर देती है। ज्वालामुखी जैसा रुद्र रूप भी माधवी रजनी का मधु बन जाता है। लेकिन जब इस प्रकार सीता का चित्र केशव खींचते हैं तो सौन्दर्य भावना प्रचण्डता में अव्यक्त हो जाती है। काव्य का सौन्दर्य न रह कर कर्कशता की लपटें दिखाई देती हैं। देखिये:—

महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी,
कि संग्राम की भूमि मे चण्डिका सी।
× × × ×
मनौ औषधी—वृन्द मे रोहिनी सी,
कि दिग्दाह मे देखिये जोगिनी सी।
× × × ×
सम्पूर्न सिन्दूर प्रभास कैधौं,
गनेस—भाल—स्थल चन्द्ररेखा।

कहने का अर्थ यह है कि प्रसाद के पाण्डित्य पर सौन्दर्य भावना का प्रेम बन्धन है और केशव की कला पर पाण्डित्य का साम्राज्य। प्रसाद की सौन्दर्य भावना भावुकता भरी कोमल कल्पना प्रधान और कलित है।

उनका श्रद्धा का अनूठा चित्र अनन्त है। रूप का ऐसा अद्भुत चित्र अन्यत्र देखने मे नहीं आया। आइये प्रसाद की श्रद्धा दिखाऊँ—

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार, एक लम्बी काया, उन्मुक्त,
मधु पवन क्रीडित ज्यों शिशु साल, सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।
× × ×
नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यो बिजली का फूल, मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।
× × × ×
घिर रहे थे घुँघराले बाल, अंस अवलम्बित मुख के पास।
नील घन-शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास॥
और उस मुख पर वह मुसक्यान! रक्त किसलय पर ले विश्राम।
अरुण की एक किरण अम्लान, अधिक अलसाई हो अभिराम॥
नित्य यौवन छवि से ही दीप्त, विश्व की करुण कामना मूर्त्ति।
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण, प्रकट करती ज्यों जड मे स्फूर्त्ति॥
उषा की पहिली लेखा कान्त, माधुरी से भींगी भर मोद।
मदभरी जैसे उठे सलज्ज, भोर की तारक द्युति की गोद॥
कुसुम कानन–अंचल में मन्द, पवन प्रेरित सौरभ साकार।
रचित परमाणु पराग शरीर, खड़ा हो ले मधु का आधार॥
और पडती हो उस पर शुभ्र, नवल मधु-राका मन की साध।
हँसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब, मधुरिमा खेला सदृश अबाध!

ये सौन्दर्य भावनाये भव्य है। केशव की सौन्दर्य भावनायें भी अनोखी हैं पर वे हृदय की नहीं, बुद्धि की हैं। उन मे मनोविज्ञान की अपेक्षा ज्ञान की प्रधानता है।

प्रसाद की कमनीय कलम दिव्यादिव्य है। हिन्दी काव्य कुसुमाकर मे बिजली के फूल इसी कलाकार ने खिलाये है। आधुनिक काव्य मे प्रसाद की मंजुता हिन्दी काव्य की सुन्दरता है। सुन्दरता का यह स्रोत सर्वतोमुखी है।

आज के काव्य की सौन्दर्य भावना संस्कृति के आधार पर है, प्रकृति के आधार पर है, विदेशी विचारधारा के आधार पर है और इन आधारो का आकार मानसिक अभिव्यक्ति है। वैसे आज काव्य अनेको दिशाओ मे है। कुछ

कुंठित और कुछ स्वच्छन्द, कोई निश्चित लक्षण नहीं किया जा सकता। लेकिन जो कुछ प्रत्यक्ष है वह इस प्रकार है।

संस्कृति की गतिविधि से मानसिक सुख-दुःख की अभिव्यंजना आज की कलम की कला है। कला का सौन्दर्य संस्कृति और समाज की कठोरता के प्रतिकूल हृदय रंजन की तस्वीर बन कर प्रकट हुआ है। प्रेम और अनुभूति का सौन्दर्य ही आज के काव्य की सम्पन्न सौन्दर्य भावना है। विरह की व्यथा, प्रेम की अनुभूति, यथार्थ की प्रेरणा संस्कृति और समाज की क्रूरता में क्रीडा करती है। यह क्रीडा ही आज के काव्य की अनुपम सौन्दर्य भावना है।

विदेशी काव्यधारा के आधार पर भी आज के काव्य की निर्मिति है। पाश्चात्य प्रभाव काव्य पर ही नहीं, संस्कृति पर भी पडता जा रहा है। और क्योंकि पश्चिम आदर्श की अपेक्षा यथार्थ की ओर अधिक है, उसमे स्वभाव और मन की बात है। व्यक्ति का उस ओर आकर्षित होना प्राकृतिक है। और क्योंकि काव्य हृदय की वस्तु है, वह यथार्थ की अभिव्यक्ति करता है। इसलिये भाव विनिमय का माधुर्य आना ही था। अतः विदेशी लालित्य भी आज के भारतीय काव्य की सौन्दर्य भावना में आया।

प्रकृति की विभानन्द रमणीयता का तो कवि भौंरा है। प्रकृति सौन्दर्य के बिना अनुभूति का सौन्दर्य आनन्द नही देता। आज कवि की सौन्दर्य भावना प्रकृति-सम्पन्न है। यह प्रकृति सौन्दर्य अनूठा है। कवि का जीवन, प्रकृत विषय और प्रकृति विनिमय आकृति में अभिव्यक्त है। प्रकृति का चित्रण चरित्रमय है, चित्रमय है। प्रकृति मे जीवन-दर्शन हृदय के सौन्दर्य को आकार देता है, और काव्य की इसी सौन्दर्य भावना का नाम छायावाद है। आज के प्रायः प्रत्येक कवि ने प्रकृत्यात्मक अभिव्यक्ति की है। प्राणी की प्रकृतिमय अभिव्यंजना, अनुभूतियों के चमत्कार, प्रकृति की तन्मयता, जड और चेतन के चेतनामय चित्र सौन्दर्य-भावना की क्रीडा भूमि पर केलि करते हैं।

देवताओं की लोकसभा में—

विष्णु (अध्यक्ष पद से)—माननीय सदस्य गण ! सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की लोकसभा मे आज साहित्य शिरोमणि कवि-कुलाचार्य माननीय सदस्य श्री व्यास जी ललित कला और कलाकार सम्बन्धी विधेयक उपस्थित कर रहे हैं, जिस का समर्थन अग्रपूज्य श्री गणेश करेंगे। आइये व्यास जी।

व्यास—शक्ति-सम्पन्न-जनाधिप माननीय अध्यक्ष महोदय एवं सदस्यो ! सम्मान्य अध्यक्ष महोदय ने मेरा नाम श्री शब्द से अलंकृत किया है, इसी लिये तो अर्थ मन्त्रिणी माननीया श्री ने रुष्ट होकर मुझे बाबाजी बना दिया। एक लँगोटी और कलम, बस यही इस कलाकार की पूंजी है। आप जानते ही हैं कि स्त्री को ईर्ष्या का असाध्य रोग होता है। फिर हमारे अध्यक्ष भगवान् विष्णु भी भावुक ठहरे। बडे भोले हैं बिचारे। जहाँ किसी ने उनके नाम की माला जपी कि वह उसके हुए। यही तो कारण है कि कलाकारों ने भगवान का भोला स्वभाव देख उनका स्वरूप हृदयंगम कर अनेकों दृश्य और अदृश्य संसार रच डाले। भगवान भी गद्‌गद् हो गये। प्रसन्न होकर उन्होंने वरदान दिया कि हे कलाकारो ! आप ने मेरी भावनाओं को साकार रूप दिया है, अत मैं आपको श्री युक्त करता हूँ। यह सुनते ही लक्ष्मी जी की भृकुटि तन गई। वे आँखों की राह से भगवान पर बरसने लगीं। वे भगवान की गोद मे आँसुओ के मोती बरसाती हुईं बोलीं—ये कलाकार भयंकर भूत हैं। अपनी कलम के बल पर ये क्या नहीं कर सकते ? आप को मोह सकते हैं, सृष्टि को बदल सकते हैं। अच्छा यही है कि मै इनके जीवन मे अभाव बन कर इन की साधना भंग करती रहती हूँ। तभी तो ये आप तक नही पहुँच पाते। नहीं तो सम्भव था कि आप ने मुझे कभी की मोक्ष प्रदान करदी होती। ललित कलाओं मे इतना आकर्षण है भगवान ! कि फिर

में आप को नहीं भाती। अर्थ के अभाव मे ये कलाओं की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं कर पाते। तुम ही नही देव! ये मुझे एवं समस्त देवताओ को भी मोह सकते हैं। मुझे ललित कलाओ मे अपना अस्तित्व भंग होने का भय बना रहता है। ललित कलाओ की समष्टि ही तो सम्पूर्ण शक्ति है आराध्य! कृपा यही है कि कलाकार वाणी की वीणा पर मुग्ध हैं। मेरी स्तुति मे इन की वाणी नहीं खुलती। नहीं तो परित्याग विधेयक पर मैं भी अपनी सम्मति दे चुकी होती। दया करो भगवान! दया करो! इन्हे श्री से वंचित ही रहने दो, नहीं तो हम सब का अस्तित्व सन्देह मे पड़ जायेगा।.. ....

लक्ष्मी—(बीच ही में) माननीय अध्यक्ष महोदय! क्या कवि-कुल-गुरु व्यास जी जो कुछ कह रहे हैं वह विषयान्तर नहीं है?

सरस्वती—(अध्यक्ष के उत्तर से पूर्व ही) माननीय अध्यक्ष जी! क्या विषय का विचार लक्ष्मी जी को ही अधिक है? या वे आप पर व्यक्तिगत प्रभाव डालना चाहती हैं? अथवा उन की इच्छा वक्ता को चुप करने की है?

बृहस्पति (शिक्षा मंत्री)—माननीय अध्यक्ष जी की आज्ञा से मैं सम्मान्या अर्थ मन्त्रिणी श्री लक्ष्मी जी से आवेदन करता हूँ कि विधेयक उपस्थित होने से पूर्व ही विषयान्तर होने का प्रश्न कहाँ से उठ खड़ा हुआ! अभी तो केवल भूमिका बाँधी जा रही है।

लक्ष्मी—यह भूमिका है या पुराणो की कथा? मैं श्रद्धेय अध्यक्ष महोदय का ध्यान इस ओर आकर्षित करती हूँ कि व्यास जी को माननीय सदस्यों का समय चाटने की स्वीकृति न दी जाय। वक्ता महोदय अपनी सीमा से बाहर जा रहे हैं।

विष्णु—आप पहिले विधेयक पढ़िये व्यास जी! फिर उस पर विचार प्रकट करें, और यह भी ध्यान रक्खें कि यह कोई कवि-सम्मेलन नही है। भाषा लोक-सभा की होनी चाहिये न कि साहित्य सम्मेलन की।

व्यास—भगवान का निर्णय सर आँखो पर। मै लक्ष्मीपति की आज्ञा से विधेयक पढ़ता हूँ।

"लोकसभा का यह अधिवेशन ललित कलाओ एवं कलाकारो की

प्रगति, व्यापकता तथा विकासार्थ निम्नांकित विधेयक स्वीकार करता है।

ललित कलाओं में वास्तु, चित्र, मूर्ति, संगीत एवं काव्य कला की सत्यम् शिवम् सुन्दरम् स्थितियाँ सर्वत्र श्रद्धात्मक एवं विकासवादी हैं। त्रिगुणात्मक सृष्टि का यह सगुण निर्गुण संगम आनन्दमय है। लौकिक एवं पारलौकिक रसों का आस्वादन कलाओं से ही होता है। अतः भारत सरकार ललित कलाओं के विकासार्थ एक पृथक राजकीय विभाग रक्खेगी, जो अथक प्रयत्नों से ललित कलाओं का पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न रूप में स्थायित्व स्थापित करेगा, एवं देश देशान्तरों में ललित कलाओं की नदियाँ निकाल जीवन लालित्य तथा सत्य की लहरें लहरायेगा।

यह सभा यह भी मानती है कि कलायें प्रकृति, शिक्षा, इतिहास, समाज, हृदय, बुद्धि, बन्धुत्व, प्रगति एवं माध्यम हैं। व्यष्टि और समष्टि का आत्मैक्य कलाओं में है। आत्मा की भाषा कला है। सूक्ष्म जगत की अभिव्यक्ति कला की कलम ही करती है। किसी भी राष्ट्र एवं युग का गौरव समकालीन ललित कलाओं पर ही दर्शनीय है। इस मूलभूत उद्देश्य की पूर्ति के लिये गणराज्य की यह लोकसभा हर सम्भव उपाय प्रयोग में लायेगी।

सम्प्रति निम्न चित्र विधि स्वरूप कार्यान्वित किया जायेगा।

ललित कलाओं के लिये एक पृथक विस्तृत 'आय व्यय लेखा' रहेगा। "कलाओं की प्रगति" नामक अनुमानपत्र में उदारता का विशेष ध्यान होगा।

ललित कलाओं पर पाँच पाँच लाख रुपये के पाँच पुरस्कार प्रत्येक वर्ष भारत सरकार की ओर से दिये जायेंगे। प्रत्येक कला के सर्वश्रेष्ठ आदर्श पर पाँच लाख रुपये का 'गणमुकुट पुरस्कार' रचयिता के सम्मानार्थ संसार के विश्वस्त विद्वानों के निर्णयानुसार भेंट होगा। सर्वश्रेष्ठ रचना के निर्णयार्थ विश्व के विश्वासपात्र सच्चे विद्वान होंगे।

इन बड़े पुरस्कारों के अतिरिक्त लेखकों के सम्मानार्थ और भी पुरस्कार प्रान्तों एवं केन्द्र के अन्तर्गत रहेंगे।

रचयिताओं को निर्माण के लिये सरकार की ओर से पूरी सुविधायें

दी जायेंगी। उन्हें आर्थिक कठिनता के कारण गतिअवरोध का अवसर नहीं रहेगा। उनकी जीवन सम्बन्धी सभी आवश्यकतायें सरकार पूरी करेगी, तथा उन्हे निर्माणार्थ जो सामग्रियॉं चाहियेंगी वे भी पूरी होगी।

रचयिता निर्माणार्थ देश विदेशो मे सरकार की ओर से जा सकेंगे।

साहित्य–निर्माण के लिये सब भाषाओं के साहित्य के बडे बडे पुस्तकालय खोले जायेंगे। पाठको और रचयिताओं के लिये ये पुस्तकालय चौबीस घण्टे खुले रहेगे।

रचयिताओ के लिये प्रकृतिरम्य स्थानो पर 'लेखक आश्रम' बनवाये जायेंगे, जहॉं लेखको के लिये लघु लिपिक आदि की सब सुविधायें रहेगी।

रचयिता अपने आप में स्वतन्त्र रहेंगे। उन्हे ललित कलाओ की निर्मिति के अतिरिक्त सब चिन्ताओं से मुक्त रक्खा जायेगा।

भारतीय साहित्य का अन्य भाषाओं मे अनुवाद कराया जायेगा। अन्य भाषाओं के साहित्य का अनुवाद हिन्दी में कराया जायेगा।

गणराज्य की स्थापना की स्मृति स्वरूप प्रत्येक कला की एक उत्तरोत्तर सुन्दर निर्मिति रचवा जनता के रत्न रूप मे सदा के लिये सुशोभित की जायेगी।

कलाकारों के रूप मे ये पॉंच रत्नाकर राष्ट्र की निधि होगे। निर्माताओ की सभी समस्यायें गणराज्य द्वारा पूरी होगी, और गणराज्य की गरिमा निर्माताओ की पूर्ति स्वरूप मे व्यक्त होगी। रचना रूपी झालो से जो कुछ हीरे मोती उन पर आयेंगे उन सब पर जनराज्य का अधिकार होगा।

भारतीय भाषा हिन्दी मे राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि सभी प्रकार का साहित्य स्वाध्याय और प्रकाश के लिये निर्माण कराया जायेगा।"

सम्मान्य सदस्यो ! सूत्र रूप से यह विधेयक आप के समक्ष है। संक्षेप में सारांश आप समझ ही गये होगे। दो चार शब्दो मे केवल यही कहना है कि कलम मे जो शक्ति है वह किसी बम मे नही। कलम की खूबियाँ और कलाकारो की दुर्दशायें किसी से छिपी नही। कलाओं एवं कलाकारो की कहानियां सुना कर मैं आप की आँखे गीली नहीं करना चाहता। पर यह अवश्य कहूँगा कि इस हतभागे देश मे कलाकारों के आँसू पत्थरो पर गिर कर टूटते रहे हैं। उन मोतियो का मूल्य आँकने वाली आँखें आकाश की ओर देखती रही। और किसे कहूँ हमारे विदेश मन्त्री महामुनि नारद अपना तूँबा और खड़ताल लिये दूसरों के द्वारो पर आसन जमाते रहते हैं। अपने साहित्य मे उन्हें दुर्गन्ध आती है। गृहमन्त्री शिवशंकर भी बूटी की तरंगो में दूर दूर तो घूमते रहते हैं पर कलाकारो को देखते ही माथे मे तीन वल डाल लेते हैं। हम देखते हैं कि दूसरे देशो मे कलाकार का राजमुकुट से अधिक मूल्य है, और भारतवर्ष मे कलाकारो का मूल्य भिखारी की झोली से भी करुण है।

कला और कलम ही निधि एवं नित्य हैं। यदि कोई राष्ट्र कलाओ से शून्य है तो उसे श्मशान ही समझना चाहिये। यदि किसी देश में कलाकार भूखा है तो वह राष्ट्र या तो भूखा है और या आँखें होते हुए भी उसे दिखाई नहीं देता। यदि कलम और कला का उद्यान सूखता है तो संस्कृति की हरियाली ही सूख जाती है। अतः मै आशा करता हूँ कि प्रस्तुत विधेयक पर आप सब अपनी स्वीकृति की छाप लगा इस राष्ट्र को ललित कलाओ के अलंकृत आसन पर आसीन करेंगे।

(सभा मे हर्ष एवं जागृति की लहर दौड जाती है और व्यास प्रशंसक ध्वनियों के बीच अपने स्थान पर बैठ जाते है।)

विष्णु—अब माननीय सदस्य श्री गणेश विधेयक के समर्थन मे तर्कोक्तियां प्रकट करेंगे।

गणेश—गणराज्य के विचारशील माननीय सदस्यो ! कलाओं की किरणें असुन्दर को भी सुन्दर बनाती हैं। राष्ट्र-जीवन के हर क्षेत्र मे सुन्दरता का समावेश करने के लिये कलाओ की उन्नति ही माध्यम है। जीवन की अभिव्यक्ति,

सौन्दर्य की सृष्टि, आकर्षण का अमृत और प्रगति की पूर्णिमा ललित कलाओं मे ही उदित होती है। कलायें ही भावनाओं की वे आकृति हैं जिन मे कुछ भी असुन्दर नहीं। साहित्य, संगीत, चित्र, मूर्ति और वास्तु कला की जो गत स्मृतियाँ पृष्ठों और भूमि पर अवस्थित हैं, वे ही तो इतिहास, दर्शन, मन, बुद्धि, श्रद्धा एवं प्रगति की पगडण्डियाँ हैं। कला की कलम ही लोक लोकान्तरों की भाषा है। एवं कलाकार ही युग का प्रतिनिधि सम्राट् है। युग की ऐतिहासिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, सामाजिक गतियाँ कलम की नोक से ही नित्य नये रूप मे निखर नया जीवन देती हैं।

कला और कलम की शक्ति अमर है। जिसके पास यह शक्ति है वह क्या नही कर सकता? कला और कलम गणराज्य की गरिमा है। जिस देश और काल में कला और कलम का आदर नहीं, उस देश और काल का आदर नहीं हो सकता। वह देश निर्जीव है। भारत की साहित्यिक प्रगति अतुल्य थी। इस देश की कलम सब काल और सब देशों मे पूज्य रही। पर यह हतभागा देश कलाकार को भूखा ही मारता रहा। भवभूति आँसू बहाते रहे। प्रेमचन्द कर्जदार मरे। रवीन्द्र नाथ ठाकुर का सम्मान दूसरे देशों ने किया। और क्या जयशंकर प्रसाद का कोई स्मारक हमने बनाया? उनकी रचनायें अमर हैं। वे शब्दो में शाश्वत हैं। पर उनके प्रति हमारी आँखें झुकी ही रहीं। यह भी कहा जा सकता है कि हम परतन्त्र थे, क्या करते? पर अब तो स्वतन्त्र हैं। हम आशा करते हैं कि गणराज्य की कलम को उचित आसन मिलेगा।

इन शब्दों के साथ मैं कविकुलाचार्य व्यास जी के विधेयक का समर्थन करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप सब श्रद्धा और विश्वास से राष्ट्र के इस गौरव को स्वीकार करेंगे।

विष्णु—अब आपके समक्ष अर्थमन्त्रिणी श्री लक्ष्मी जी विधेयक के विरोध मे कुछ कहेंगी।

लक्ष्मी—लोकसभा के माननीय सदस्यो! आप ने व्यास जी द्वारा उपस्थित विधेयक सुना। वैसे तो आपने स्वयम् भी उस पर विचार किया होगा, पर मैं आपका ध्यान वर्तमान आर्थिक स्थिति को सामने रखते हुए

आकर्षित करना चाहती हूँ। आप देखते हैं कि आजकल हमारे देश की आर्थिक अवस्था कितनी दुर्बल है। हो सकता है कि हमें अन्य आवश्यक कार्यों के लिये दूसरे देशों से ऋण लेना पड़े। ऐसी स्थिति में एक ज़बरदस्त व्यर्थ व्यय का बोझ सर पर लादना किसकी समझ में आयेगा। हमारे सामने सब से पहिले रोटी कपड़े की समस्या है, देश की रक्षा का प्रश्न है, गरीबी दूर करने का सवाल है और यदि इन प्रश्नों के हल से पहिले ये नये प्रश्न खड़े कर लिये तो कहीं भारत बन्धक न हो जाये।

फिर सरकार से जहाँ तक बनता है इन सब बातों के लिये कुछ न कुछ करती भी है। रेडियो है, कुछ प्रान्तीय सरकारों की ओर से व्यवस्थायें हैं। एकदम यह नया तूफान सर पर लेना तो सरकार के लिये घातक होगा। कविता संगीतादि के व्यसन में रुपया व्यय करना देश के धन का दुरुपयोग है।

नारद—नारायण! नारायण! लक्ष्मी तो उल्लू की पीठ पर बैठती है, हंस के सिंहासन पर बैठ कर वह सब का सौभाग्य बन कर क्या लेगी!

लक्ष्मी—अध्यक्ष महोदय! यह लोकसभा है या चौपाल? आपकी आज्ञा के बिना नारद को बोलने का क्या अधिकार था?

नारद—शान्त अर्थमन्त्रिणी जी! शान्त! लोकसभा चौपाल न बनाइये। कम से कम अध्यक्ष के साथ माननीय लगा कर बोलिये!

लक्ष्मी—और यह भी कहिये कि नारद के साथ भी माननीय लगाना चाहिये था।

बृहस्पति—हाँ, चाहिये तो था।

विष्णु—आज्ञा! आज्ञा! यदि सब स्वेच्छा से बोलना चाहते हैं तो मैं आसन खाली कर दूँ? मैं निर्णय देता हूँ कि वक्ता के बीच में कोई न बोले।

लक्ष्मी—तो मैं समझती हूँ कि औद्योगिक विकास की अत्यन्त आवश्यकता है, जिस से जनता को सुख और शान्ति दे सकते हैं। गप शप और आकाश पाताल नापने से कोई लाभ नहीं। अतः मैं इस विधेयक का बिल्कुल विरोध करती हूँ।

बृहस्पति—यदि सर्वसम्पन्न अध्यक्ष महोदय की आज्ञा हो तो मैं भी विधेयक के पक्ष में कुछ कहना चाहता हूँ।

विष्णु—अवश्य! अब आप के सामने विद्या-विधान बृहस्पति जी विधेयक के विषय में कहेंगे।

बृहस्पति—आनन्द कन्द अध्यक्ष महोदय एवं जनता के विशेषज्ञ प्रतिनिधियो! आपके समक्ष उपस्थित विधेयक गणराज्य के गौरव के अनुकूल है। स्वतन्त्र भारत ललित कलाओं से मण्डित हो संसार मे प्रकाशोज्ज्वल रहे तो आप सब का विकास ही है। कलायें केवल हृदय रंजन के लिये ही नही होतीं, उनसे राष्ट्र की शिक्षा, आदर्श और अर्थ की समृद्धि होती है। कलायें देश की प्रगति का माध्यम हैं। कलाओं में संसार की सिद्धि निहित है। आशा और विश्वास है कि आप सब एकमत होकर विधेयक स्वीकार करेंगे।

अध्यक्ष—अब आपके सामने माननीय शिवशंकर विधेयक के विरोध मे विचार प्रकट करेंगे।

शिवशंकर—माननीय अध्यक्ष महोदय एवं उपस्थित सदस्यवृन्द! सरकार और देश की स्थिति आपके सामने हैं। चारों ओर घटायें घिरी हुई हैं। साम्प्रदायिकता और साम्यवाद आदि तरह तरह के संघर्ष सर पर हैं। काश्मीर की समस्या आप देख ही रहे हैं। बेकारी से देश के बरबाद होने का भय है। उत्पादन बढाना आवश्यक है। और माननीय लक्ष्मी जी के विचारानुसार आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति दिन पर दिन बिगडती जा रही है। देश की रक्षा का प्रश्न सर्व प्रथम है। इन सब बातों को देखते हुए प्रस्तुत विधेयक की बात सोचना मुझे तो हवाई घोडे पर दौडना लगता है। इन सब बातों के लिये अभी समय नही, बाद में भी सोचा जा सकता है। अतएव मैं इस विधेयक का ज़ोरदार शब्दों मे विरोध करता हूँ।

अध्यक्ष—अब आप के सामने माननीया हंस-वाहिनी श्री सरस्वती विधेयक के पक्ष में बोलेगी।

सरस्वती—सर्वगुण सम्पन्न जनप्रिय अध्यक्ष महोदय एवं विचारशील सदस्यो! विधेयक आपके समक्ष है। पक्ष और विपक्ष मे आपने उक्तियाँ सुनी। विपक्ष मे अर्थ मन्त्रिणी तथा गृहमन्त्री विशेष रूप से अर्थ का अभाव बताते हुए विधेयक का विरोध करते हैं। लेकिन उनकी भाषा मे कहीं ऐसा प्रकट नहीं हुआ कि प्रस्तुत विधेयक अनिवार्य नहीं। अतः विधेयक की आवश्यकता वे अनुभव करते हैं। अब रही अर्थ की बात। जहाँ आज अर्थ अनेको अनावश्यक कार्यों में लापरवाही से व्यय किया जा रहा है, वहाँ इस सत्कार्य में आपत्ति क्यों? विदेशों मे दूतावासों पर लाखों रुपये का व्यय है। इधर उधर की यात्राओं में कितना ही रुपया खर्च होता है। और भी ऐसे अनेकों खर्च चलते ही रहते हैं। और फिर हम सब के राजसी ठाठो में भी कम व्यय नही होता। सादगी आदि आदर्श सिद्धान्त महलों की मीनारों में बदल चुके हैं। कलाकार भूखा मर रहा है और उधर खस की टट्टियों पर लाखों रुपये का पानी छिड़का जा रहा है। कलाकार के बच्चे भूख और बीमारी से मर रहे हैं, तथा इधर मखमल के कालीनों पर पैर छिले जाते हैं। एक ओर हज़ारो रुपये मासिक वेतन और दूसरी ओर शव ढकने को कफन तक नहीं। क्या यह सब न्याय है? फिर कलाओ से राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक और नैतिक प्रगति होती है। इसलिये मै समझती हू कि इस विधेयक की स्वीकृति से आर्थिक घाटा नहीं होता अपितु आर्थिक वृद्धि होती है। साथ ही जीवन जागृति एवं स्वतंत्रता कलाओं की नींव पर ही स्थिर है। अतएव आप सब एक वाणी होकर विधेयक पर अपनी अमिट छाप छाप दे।

अध्यक्ष—समय अधिक हो गया है। विधेयक के पक्ष और विपक्ष में अभी बहुत से माननीय सदस्य बोलने को शेष है। अतः विधेयक आगामी बैठक के लिये विचाराधीन छोड़ा जाता है।
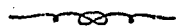
यही तो कला है

अपने ही अंगो से बरसती हुई बिजली की परिक्रमा मे वह पूजा सी निस्कम्प ज्योति थी । उसके कानो में करुणा, अधरों पर गीत और आंखो मे सहानुभूति शर्माती थी। मानो मानस मे अनेको सागर छिपाये वह अमृत छिड़कने को आकुल अलक्ष्य ओट की प्रतीक्षा मे थी।

उस अद्भुत आकर्षण की ओर कलाकार खिंचा चला गया। वह स्वयम् को न सँभाल सका। हृदय की अमूल्य निधि लिये हुए वह बोल उठा—इसे स्वीकार करो छवि !

छवि ने आँखें ऊपर उठाईं, मानो सौन्दर्य और ऊँचा उठ गया। आँखे कलाकार को अधर मे लटका कर फिर नीचे झुक गईं।

छवि के हृदय मे भूचाल और आँखो मे स्थिरता देख कलाकार ने भावना का आँचल फैला दिया। आँसू की दो बूंद ढुलकाते हुए उसने कहा—मुझे तुम्हारी छाया चाहिये छवि ! क्या तुम अपने कोमल हृदय से उस पाषाण को जो पिंघलते पिघलते पत्थर हो गया है फिर पिंघला दोगी ? क्या वह चंचल जीवन जो जम कर जड हो गया है फिर लहरा सकेगा ?

कलाकार ठुकराये भिक्षुक की तरह उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था, और लगातार कहता जा रहा था अपनी कहानी। सुनने से ऐसा लगता था मानो इसकी कहानी कभी समाप्त ही नहीं होगी। वह मानो वेदना के सिन्धु को सौन्दर्य-जलधि मे उड़ेलना चाहता था। छवि को कलाकार पर दया और हँसी आई। पर वह अपने मन की गहराई मे अपने सब भावो को छिपा शिशु सी बोली—मैं परतन्त्र हूँ और आप भी बन्धन-मुक्त नही। मुझे आपके पैरो की गति बनने मे प्रसन्नता है। पर क्या समाज और परिवार यह सब देख सकेगा ? और फिर आपकी ...

कलाकार—इन सब की परिधियाँ बहुत छोटी हैं छवि ! पाषाण आँसुओं से नहीं पिघला करते। उन्हें गलाने के लिये लाल लोहा चाहिये। सब मुझ से सब कुछ चाहते हैं और मैं सब से केवल एक वस्तु चाहता हूँ। पर दुनिया मुझे वह भी देना नहीं चाहती। क्या यह दुनिया का अन्याय नहीं ? मैं दुनिया की चिन्ता नहीं करता। उस दुनिया की चिन्ता मैं क्यों करूँ जिस दुनिया ने एक ही दियासलाई से मेरे अरमानों की चिता जला डाली। और जो मुझे जिन्दा जला रही है। छोडो उन बीती कहानियों को छवि ! छेड़दो वह गीत जिससे पतझड बसन्त में बदल जाये, जिससे ग्रीष्म मधुमास बनकर गा उठे।

छवि छिपी आँखों से कभी कलाकार के मुँह को देखती और कभी भावुकता की गहराई को आँकने लगती। वह व्यग्रता देख आकुल हो उठी। उसने करुणा के कोमल कण्ठ से कहा—मैं तुम्हारी हूँ कलाकार ! पर मेरे मार्ग मे बहुत से काँटे हैं। वे तुम्हारा मार्ग रोकेंगे, तुम्हारे कोमल पैरो मे गड गड कर रक्त पियेंगे। क्या तुम घायल होकर गिर नहीं पडोगे ? तुम अपने जीवन की शान्ति समझकर मुझे चाहते हो, पर तुम्हारा जीवन दुःखो के अतल सिन्धुओं में छटपटा उठेगा।

कलाकार—जब तक तुम मेरे साथ हो तब तक मैं कैसे गिर सकता हूँ छवि ! तुम्हारी कोमलता से मेरे पैरों में बज्र से भी अधिक बल होगा। तुम्हारे होते हुए धूप मुझसे दूर रहेगी। तुम छाया बनकर मुझे धूप से बचाये रहोगी। तुम मेरे पैरो की गति, प्राणो की ममता और जीवन की शक्ति बन कर कर्मों की बटिया बता सकोगी।

छवि—यदि मैं तुम्हारी आकांक्षाओं की पूर्ति के साथ साथ तुम्हारी गति भी बन सकी तो स्वयं को सफल समझूँगी। आज से मैं तुम्हारी हूँ कलाकार !

'मैं तुम्हारी हूँ कलाकार !' यह ध्वनि तूफान के साथ सारे संसार में गूंज उठी। हर ओर से एक ही आवाज़ कानो मे पडती—छवि ! कलाकार ! छवि ! कलाकार !

भयङ्कर शोर से छवि का हृदय काँप उठा। कलाकार का भी हृदय हिला, पर वह गम्भीर रहा। छवि ने छटपटाते हुए कहा—अब क्या होगा ?

कहां रहेगे ? कैसे जीवन चलेगा ?

कलाकार—जो होना होगा, जहाँ ईश्वर रक्खेगा, जैसे भी जिन्दगी चलेगी। संसार से भागो मत छवि ! संघर्षों पर विजय पाओ !

छवि—इतनी बडी दुनिया और तुम अकेले !

कलाकार—अकेला क्या नहीं कर सकता छवि ! अच्छा, अब तुम शयन करो। मै पुस्तकालय जाता हूँ।

दो घण्टे बाद क्षत विक्षत कलाकार छवि के सामने आकर गिर पड़ा। छवि खून मे लथपथ कलाकार को देख कर चीत्कार कर उठी। उसने कलाकार के सर के नीचे अपने घुटने का तकिया लगाते हुए कहा—यह क्या हुआ ?

कलाकार—जो नहीं होना चाहिये था छवि ! जिनको मै अपना मानता हूँ वे ही मुझे चाकुओ से बीध गये।

छवि की आँखें क्रोध से लाल हो गईं, मानो इस घटना से उस की रग रग में शक्ति दौड आई। उसने सिंहनी की तरह गर्जते हुए कहा—कौन है वे चाण्डाल ? मैं उनका खून पी जाऊँगी।

कलाकार—शान्त रहो छवि ! वे अपने है, तुम्हारे भाई जो हुए।

छवि—भाई ! कैसी विडम्बना है यह ! पर कोई भी हो, अन्याय अपने का हो या पराये का वह सहन नही किया जा सकता।

कलाकार—यह अन्याय नही, स्वभाव है छवि ! मै और तुम अपनी आँखो से देखते हैं, पर उन्हें दुनिया की आँखो से देखना पडता है। दुनिया कला को क्या जाने ! उसे मसलते कुचलते देर नही लगती। दुनिया प्राणो की छटपटाहट नहीं देखती।

छवि—तुम कितने कोमल हो कलाकार ! तुम्हें किसी पर क्रोध नही आता ?

कलाकार—कलाकार को क्रोध नहीं आता छवि ! दया आती है। जंग की तरह संस्कार जिस से चिमटे हुए हैं उस पर क्रोध करने से क्या ?

छवि—मूक होकर सहते रहने से तो दुनिया मे चल नहीं सकते।

देखते नहीं, दुनिया ने जीना दूभर कर रक्खा है। जिधर जाती हूँ, उधर ही ऊँगली उठती है।

कलाकार—कर लेने दो दुनिया को अपने मन की। इस भंगुर संसार में कौन किसे कितने दिन सता पाता है! मृत्यु के विकराल गति क्रम में कुछ भी नहीं रहता। भलाई बुराई, दुःख और सुख है ही कितने दिन के! लोग जिसे पाप कहते हैं, कलाकार की किरणें उसी में से तो पुण्य की रेखायें निकाल कर लाती हैं।

छवि—अच्छा, अब आप शयन करिये, मैं वह चित्र रचती हूँ।

कलाकार—हृदय के करोड़ों घाव तुम्हारी एक ही मुस्कान से अमृत के झरने बन जाते हैं छवि! तुम्हारे साथ रहते मेरे आँसू हृदय में ही सूख जाते हैं। यदि कभी मैं और तुम बिछुड़ गये तो?

छवि—ऐसा न कहो कलाकार! मैं तो पहिले ही दुःखों की मारी हूँ। ईश्वर इतना अन्यायी नहीं हो सकता।

कलाकार—ईश्वर की कल्पना भी कितनी मधुर है छवि! पर क्या वास्तव में ईश्वर सब अच्छा ही करता है?

× × × ×

दुःखों के भीषण बवंडरों में छवि और कलाकार इसी प्रकार मुस्कराते रहे। बातों ही बातों में ये दिन हवा हो गये। एक दिन छवि ने कहा—लाये वह स्वर्ण हार?

कलाकार—हार कहाँ से लाऊँ छवि! क़लम को अर्थ तो मिलता ही नहीं।

छवि—मैं नहीं जानती। यह सब आपको तब सोचना चाहिये था जब ......। मैंने तुम्हारे लिये अपनी बर्बादी की और तुम मेरे लिये ....

कलाकार—दुनिया ने रास्ते बन्द कर दिये हैं छवि! मैं क्या करूँ?

छवि—कुछ भी करो।

कलाकार—आखिर क्या करूँ? समझ में नहीं आता तुम्हें क्या होता जा रहा है। जब देखो तब मुँह बना रहता है। जब देखो तब लड़ने को तैयार रहती हो।

छवि—ऊब गये हो न मुझ से, चार दिन का चाव था।

कलाकार—चार दिन का चाव नहीं! तुम्हे उदास देख कर मै संज्ञाहीन हो जाता हूँ। और नाही मैं तुम से दूर रह कर एक दिन भी बिता सकता हूँ। क्या तुम भी मुझे नही पहिचान सकीं छवि! तुम्हारा सुख, तुम्हारा सौन्दर्य और तुम्हारी जिन्दगी ही मेरी ज़िन्दगी है। मै तुम्हें इन्द्राणी से भी ऊपर देखना चाहता हूँ, पर क्या करूँ अर्थ के अभाव ने मेरा मार्ग रोक दिया है। मै जानता हूँ तुम बहुत दुखी हो, पर मैं क्या करूँ ?

कहते कहते कलाकार रोने लगा। उसने छवि के कण्ठ में आँसुओ के मोतियों की माला पहिनादी। छवि भी रोने लगी। उसने रोते रोते कहा—नहीं, नहीं! मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैंने बड़ी भूल की। क्षमा कर दो नाथ! आप के अमूल्य प्रेम के आभूषणो से सुन्दर आभूषण और मेरे लिये क्या होगा!

दोनो के आँसुओं से जो परस्पर प्रेम बरसा वह कितना मधुर था। वास्तव मे प्रेम वही है जो कटुता मे भी मधुर रहे। लड़ते कटते रहे, पर एक दूसरे से अलग न रह सकें।

जो अपने निकट होता है, उसकी उदासीनता मे मनुष्य कितना दुखी रहता है। उसके चित्त को दुखाने वाली कुछ बात करने और कहने से वह स्वयम् को अपराधी मानता है। जब तक उसके हृदय से वह विषाद किरण निकल नहीं जाती, तब तक उसे शान्ति नही मिलती। और उसे शान्ति नही मिलती तब जब वह चाहता हुआ भी अपने साथी को प्रसन्न करने में असमर्थ होता हैं। वह उसे सुखी देखना चाहता है पर अभाव उसे देखने नहीं देते।

विवशता की विवेचना करता हुआ कलाकार प्रकृति से बातें करने लगा—मैं क्या करूँ ? और वह क्या करे ? मैं रात दिन श्रम तो करता हूँ! कितनी कितावें लिखी हैं मैंने! लिखते लिखते थक गया, फिर भी अर्थ मुझे दूर से देख कर हँसता है। मैं छवि से लड़ता हूँ, क्या इसलिये कि मैं उसे दुखी करना चाहता हूँ ? क्या इसलिये कि वह मुझे अच्छी नही लगती ? या मै उस से ऊब गया हूँ ? नही! नहीं! यह सब कुछ नही। मै अपने अभाव

का क्रोध उस पर उतारता हूँ। और मैं ही क्या सुखी हूँ! हाँ मैं सुखी हूँ—बहुत सुखी। छवि की मर्म रश्मियाँ मेरे समस्त दुःख अपना बना लेती हैं।

कितना विश्वास होता है अपने पर। जैसे काली रात छवि की छिटकती हुई छटाओ से जगमगाती है ऐसे ही कलाकार अपने जीवन की काल रात्रि मे छवि से छविमान् था। वह दु:खो को भूल कर स्वप्न की नीद सो गया।

छवि अपनी कोमल ऊँगलियो से कलाकार की सुन्दरता सहलाती हुई अपना आँचल भिगोने लगी। मैंने यह क्या किया! ये बिचारे क्या करें! चारों ओर से विचारो की जान घिरी हुई है। आखिर क्या करें? क्या करे ईश्वर! क्या वास्तव मे तेरे यहाँ न्याय है? इतने स्वाभिमानी, इतने करुण, इतने सच्चे कलाकार की यह दशा! तो फिर क्या हो? कैसे जीवन चलाया जाये? उत्तर मे किसी ने कहा, जैसे भी चले। नही! नही! जीवन बनाना होगा। पर मनुष्य कुछ भी करने मे पराधीन है। यह व्यर्थ की विडम्बना है। कहते कहते छवि कलाकार से ऐसे चिपट गई जैसे वे दोनो शरीर से भी भिन्न नही। कलाकार के कण्ठ में आँखो से मोतियो की माला पहिनाते हुए उसने मन ही मन मे कहा—क्षमा करो! मैं अब से कभी कुछ नहीं कहूँगी। और दूसरी ध्वनि उसके हृदय से निकली—मैं नौकरी करूँगी, किसी स्कूल मे अध्यापन।

छवि अध्यापिका मे बदल गई। सौन्दर्य का स्वाभिमान अर्थ की फटकार से आँखे झुकाकर आँसू बहाने लगा। कलाकार को स्वयम् पर क्रोध आता। वह अपनी ग्लानि से गलने लगा। दूसरो की दासता से छवि पल पल रोती रहे और मे कुछ न कर सकूँ! कितने कठोर होते हैं संसार मे! तो क्या दुनिया मे जीवन भर रोना ही पड़ता है?

× × ×

दिनो की आँधियो में तीन वर्ष बिजली से कौंधते हुए निकल गये। छवि क्षीण हो गई। वह मृत्यु शैया पर श्वास लेने लगी, अकस्मात्!

कलाकार ने रोते हुए डॉक्टर से कहा—डॉक्टर साहब! कैसे भी किसी भी तरह बचाइये! मेरी छवि को बचाइये! उसने छवि की ओर देखा और फूट फूट कर रो पड़ा। छवि की आँखे भी बरसात बन गई। उसने कलाकार की ओर देखते हुए कहा—क्यों रोते हो? कोई सब साथ ही थोड़ी जाते हैं!

कलाकार सुन्न होकर रोता रहा। रोते हुए उसने ईश्वर से कहा—ईश्वर ! मुझे तू कोई भी दुःख दे दे पर मेरी छवि मुझसे न छीन ! न छीन निर्मम ! नहीं ! नहीं ! तू मेरे प्रेम की चिता न जला। उत्तर में हँसती हुई दुनिया की लाल लाल आँखों ने कहा—जल, रो, तड़प और हम हँसेंगे, खिलखिला कर हँसेंगे।

आज कलाकार हारे हुए युधिष्ठिर की तरह विवश था। उसने फिर ऊपर की ओर देखा और कहा, हे ईश्वर !

पर ईश्वर किसकी सुनता है ! हाय ! यह क्या ? छवि ! छवि ! छवि ! हे राम ! यह तूने क्या कर डाला ? नहीं, नहीं ! छवि ! छवि ! ठहरो ! ठहरो ! मुझे किस पर छोड़ रही हो ? मुझे अकेला न छोड़ो ! यह दुनिया चाण्डाल है। मुझे भी अपने साथ ले चलो ! यह पुण्यों की दुनिया है, और मैं पापी ! छवि ! छवि ! देखती नहीं, तेरा कलाकार रो रहा है ! वह कलाकार जिसके आँसू तू अपने आँचल से पूछती थी।

पर छवि ने एक न सुनी। वह आँखें फाड़े मौन पड़ी रही। मौन ! आज छवि सदा के लिये मौन होगई। मृत्यु के हिमानी अंक में पड़ी हुई वह कलाकार को पथराई आँखों से देखती रही। कलाकार रो रहा था, अपने सर से दीवारें फोड़ रहा था, और दीवारे फोड़ रही थी उसका सर। आँखो मे आँसू ! शरीर पर लहू ! ठहरजा ठहरजा बदमाश ! मैं तुझे फाँसी पर चढ़वाऊँगी, जेल भिजवाऊँगी। आज मेरे कलेजे की आग धधक कर शान्त होगी। तूने ही इसे खाया है, तूने ! यह कौन है ? माँ ! छवि को जन्म देने वाली ! आओ माँ ! आओ ! उपकार तुम्हारा ! अत्यन्त उपकार ! मैं जीवन से ऊब चुका हूँ। तुम मेरा जीवन समाप्त कर दो ! लो यह पिस्तौल ! दया न करना ! तुम मुझ पर दया कर अन्याय करोगी ! निर्लज्ज ! नीच ! कहती हुई वह झपटी। उसके हाथ मे ताला है, लोहे का बड़ा ताला ! तो क्या यह ताले से कलाकार का सर छेद डालेगी ! हटो पीछे ! यह कौन है ? मनुष्य ! नही नहीं ! मैं नहीं हटूँगी। मैं इसे लाश को छूने तक न दूँगी।

कलाकार ने छवि की ओर देखा। वह मौन थी और मौन भाषा में कह रही थी, मैं तुम्हे कैसे बचाऊँ ? नहीं, नहीं, छवि ! नहीं ! क्या मैं तुम्हें अब भी कष्ट दूँ ! तुम शान्ति की नींद सोओ ! मैं सब सह लूँगा, मौन होकर !

तुम भी तो मौन हो गई हो न !

हट ! यहाँ से हट ! नहीं नहीं ! मैं नहीं हटूँगा । छवि मेरी है । वह मुझसे कहकर मरी है कि तुम ही अपने कन्धों पर मेरा शव गंगातट पर लेजाना । यह उसकी प्रबल इच्छा थी । उसकी कोई इच्छा संसार में पूरी नहीं हुई । ससार मे किस की इच्छा पूरी होती है पागल ! प्रत्येक का अधूरा चित्र रहता है । नहीं नहीं ! यह नहीं हो सकता । मुझे उसकी यह इच्छा पूरी करने दो ! हट यहाँ से !

नहीं नहीं ! यह अत्याचार है, अन्याय है । ऐसा न करो ! उसने शव की ओर देखा । शव सत्य भाषा में कह रहा था, आठ दिन के भूखे निरीह मानव पर अत्याचार मत करो ! मेरे मरते ही यह मर चुका । लाश को क्यो नोंचते हो ? एक दिन सब को मरना है । न मारो, इसे न मारो ! मुझे दु.ख होता है । पर शव के शब्द किसी के कानो मे न पडे । लोग कहते हैं शव बोलता नहीं । शव बोलता है, पर जिन कानो मे कोलाहल के रूवड ठुसे हुए हैं वे शव के शब्द कैसे सुनें ! शव की मौन भाषा मे जितना सत्य है उतना और कहीं नहीं ।

गंगा किनारे चिता पर सोई छवि को कलाकार ने विस्मय और श्रद्धा से देखा । कहाँ जाता है जीव ? कहाँ गई यह ? पल भर मे सारा अतीत उसकी आँखो के सामने घूम गया । कण कण कुछ कह रहा था । अन्त ने कहा—लो, अब सब अपनी इज्जत पर चार चाँद लगालो ! हारे हुए कलाकार ने सम भाषा मे कहा—किसी को कुछ न कहो ! आज सब दोषों का केन्द्र मैं हूँ, क्योकि मेरे हाथ में स्वर्ण नहीं, स्वर्ण की धूलि है, जिसका स्वर्णिम सौरभ उडेगा, पर तुम्हारी कठोर आँखे देख नहीं सकतीं ।

कठोरता की कौंध में कलाकार का जीवन कठिन होगया । वह अपने स्वप्नों को याद करता और रोता । संकल्पों की धूलि मुट्ठी मे लिये वह भविष्य का पथ टटोलने लगा । तमिस्रा के काले पंजे उसका गला घोटने को लपके ।

मान और अपमान की कल्पना ने कँपकपी पैदा की । पीड़ाओ ने उसे फटकारा । मान अपमान कुछ नहीं । आदर्श किसी एक वस्तु का नाम

नहीं होता । सिद्धान्त वही है जो हमने बना लिया। पर अकेला कैसे चलूँ ? साथी बहुत ! पैरों में गति होनी चाहिये । लेकिन उत्साह तो भंग होगया । दुर्बलता त्याग ! उसके बिना ? किसके बिना पगले ! नहीं, उसके बिना नहीं चला जायेगा ।

उसने सोचा, मुझे मर जाना चाहिये । पर मेरे उद्देश्य, मेरी कामनायें, मेरे विचार ! क्या होगा सब का ? क्या वे सब संकल्प धूलि में मिलादूँ ? नहीं, नहीं ! मुझे हार नहीं माननी चाहिये । भागना कायरता है । दुनिया को बदलने वाले ही आदर्श बनते हैं । पर क्या दुनिया को बदलना सरल है ? हाँ सरल है । जिसने जान हथेली पर रखली उसके लिये कुछ भी कठिन नहीं । बहुत कठिन है ! बहुत कठिन ! भावुकता के आवेश मे कहना सरल है, पर करना मौत की भयङ्करता से भी भीषण है । मृत्यु ! कठोरता का चरम ! प्राणी का चीत्कार ! अच्छा, तो मैं जीवित रहकर क्या करूँ ? क्या हर तडपते हुए श्वास पर जीवन की आहुति देता रहूँ । हाँ जल, और इतना जल कि जिसमे जलाने वाली ज्वाला भी जलकर ठण्डी हो जाये तथा शील, शक्ति और सौन्दर्य के संगम पर लेखनी पीडा का प्रकाश लेकर नाचे ।

कलाकार ने सोचा ये श्रमिक जिनके माथा के मोतियो से ,संसार सुन्दर है क्या इन्हे छोड़ कर सन्यास ले लूँ । ये पीड़ितो के आँसू जो मुझे भिगो रहे हैं क्या मृत्यु की मिट्टी मे सुखा दूँ ? ये भूखी गउएं जो मेरे आगे रम्भा रही हैं क्या मुझसे कुछ नहीं माँगती ? अभी तू दुनिया में ज़िन्दा रह और कुछ कर ! आह ! महत्वाकांक्षा भी कितनी भयङ्कर होती है ! तड़प और आँसुओं की वटिया पर चल ! किस लिये ? महत्वाकांक्षाओं के लिये !

कलाकार चला, लेकिन जीवन से ऊबा हुआ । उसके स्वाद आँसुओ मे बदल गये । उसका मन इधर उधर दौडता, पर किसी सुन्दर मधु से उसकी प्यास न बुझती । अतृप्ति की आशायें आँसुओं मे घोलता हुआ वह गाता । उसके हर गीत मे छवि की छाया मचलती । टूटे हुए हृदय के गीतों पर दुनिया रीझती, लेकिन कलाकार को रिझाने वाली न जाने किस अलक्ष्य में बन्दी बनी रहती ।

कहाँ जाता है मर कर मनुष्य ! कैसी विडम्बना है यह ! कहाँ मिलेगी वह ? कहीं नही मिल सकती। बताओ कहाँ मिलेगी ? अगले जन्म मे मिलेगी। ये आत्मायें कहाँ रहती हैं ? भावनाओं के अन्तःपुर में। मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। सब अच्छा लगने लगेगा। आह ! कितनी शील है यह ? कितनी सुन्दर है और शक्ति कितनी है इसमे ! तुम अच्छी लगती हो ! लेकिन छवि !

कलाकार छटपटाया। अधूरे चित्रो ने उसे तड़पा दिया। मन कही दौड़ा, बुद्धि कहीं को चली। अन्त अन्यायी बन गया। वह सौन्दर्य की ओर लपका। वह छिप गया। उसने दूर से देखा, वह और सुन्दर दिखाई दिया। चित्र अधूरे थे, पर सौन्दर्य नया, उत्तरोत्तर नया। सौन्दर्य बढता था, अतृप्ति बढ़ती थी। कलाकार ने आँसू पूछते हुए पूछा—यह सब क्या है ?

उत्तर में सौन्दर्य भावना सर्वत्र गूंजी —

यही तो कला है।

कवि की गाँधी जी पर महान रचना—

जननायक (महाकाव्य)

भूमिका ले० राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद

विशिष्ट विचारों के अंश

महापुरुष के लिये जैसी महान श्रद्धांजलि होनी चाहिये थी वैसी ही यह है। हिन्दी के अनुरूप ही इसका आयतन है। हिन्दी संसार इसके लिये 'मित्र' जी का आभारी होगा।

जननायक के लिये हार्दिक धन्यवाद! आशा है जननायक सर्वत्र पढ़ा सुना जायेगा।

—मैथली शरण गुप्त

मैंने गाँधी जी पर महान ग्रन्थ "जननायक" महाकाव्य देखा। काव्य-नायक भारतीय रंगमंच पर युग निर्माता हैं। इस ग्रन्थ का निर्माण कर कवि ने जन-समाज की महान सेवा और हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की है। मुझे रचना से अशेष प्रसन्नता हुई। ग्रन्थ में अनेकों शैलियाँ हैं। निर्वाह सुन्दर है। यह ग्रन्थ गाँधी जी के अनुयायियों को आकर्षित करने में अत्यधिक सफल है। ग्रन्थकार को बधाई!

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

प्रसिद्ध कवि रघुवीर शरण 'मित्र' का हिन्दी महाकाव्य 'जननायक' देखकर प्रसन्नता हुई। मित्र जी ने एक महान आत्मा के अनुरूप ही यह महान सम्भार उपस्थित कर अपनी विलक्षण प्रतिभा, महान परिश्रम और गम्भीर अध्ययन का परिचय दिया है। गांधी जी के महान व्यक्तित्व के समान ही निस्सन्देह जननायक काव्य का व्यक्तित्व भी महान है। इसे गांधी जी का जीवन चरित्र ही नहीं अपितु गांधी युग का प्रतिबिम्ब कहना चाहिए।

गांधी जी ने भौतिकवाद के उल्बण वातावरण के वेग में प्रवाहित भारतीय जीवन में आध्यात्मिकता का आदेश स्वयं आचरण करते हुए उपस्थित किया और आजन्म अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहे।

गांधी जी के इन विचारों में पूर्ण श्रद्धा व भक्ति रखते हुए ही मौलिकता से इसकी रचना हुई है।

कवि का सत्प्रयत्न सफल हो यही हमारा नारायण स्मरण पूर्वक शुभ कामना है।

—श्री कृष्ण बोधाश्रम

'जननायक' नामक अपूर्व काव्य ग्रन्थ देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। बापू के सम्बन्ध मे महाकाव्य लिखने की मेरी इच्छा को मित्र जी ने साकार रूप दिया है। इसलिये मुझे तो बहुत ही सन्तोष हुआ। अनेक अभिनन्दन उनके इस महत प्रयास के लिये। मै पुनः उनको उनके अथक परिश्रम तथा सफलता के लिये साधुवाद देता हूँ।

—सोहनलाल द्विवेदी

जननायक के लिये अनेक धन्यवाद! मित्र जी की शैली कर्णप्रिय लगने वाली है। और काव्यों मे कर्णप्रियता का लोकप्रिय होने मे बडा हिस्सा होता है। मेरा खयाल है लोग उसे चाव से पढ़ेंगे।

—किशोरी लाल मशरूवाला

'जननायक' महाकाव्य के लिये अनेक धन्यवाद! विषय, भाव, भाषा तथा छपाई सभी दृष्टियों से पुस्तक सुन्दर है। मित्र जी का प्रयास सफल और प्रशंसनीय कहा जायेगा। मै इससे अवश्य लाभ उठाऊँगा।

—बद्रीनाथ (शिक्षा मन्त्री, बिहार)

महात्मा गांधी के जीवन चरित्र पर 'जननायक' महाकाव्य पढ़े लिखे और पंढित लोगों के लिये बेशक बडी अच्छी चीज़ है।

—मीरा बहिन

बापू का पूरा इतिहास कविता मे इस प्रकार लिखने की यह बेजोड कोशिश है। मै कवि को बधाई देता हूँ और पुस्तक की सफलता चाहता हूँ।

—मंत्री, सर्वोदय साहित्य संघ, काशी

यद्यपि गाँधी जी के सिद्धान्तों की छाप हिन्दी साहित्य पर बहुत गहरी पडी है और वे अनेकों स्फुट कविताओं के विषय बने है तथापि श्री रघुवीर शरण 'मित्र' लिखित 'जननायक' गाँधी जी पर महाकाव्य है। इसमें गाँधी जी के पूरे जीवन को लिया है और २१ सर्गों मे समाप्त हुआ है। इसमे चरित्र नायक को दिव्यता प्रदान करने की प्रवृत्ति होते हुए भी नायक की वैयक्तिक दुर्बलताओं का उद्धरण एक शिष्ट और आदर्श पूर्ण रूप से

किया गया है। इस युग का महाकाव्य इतिहास के निकट बना रहता है। क्योंकि महात्मा गांधी हमारे समय के ही है। हमारे समय को उन पर गर्व है। लेखक ने वर्तमान इतिहास को काव्य मे बाँधा है। गाँधी जी के जन्म के पूर्व की परिस्थितियों का सुन्दर काव्यमय चित्रण हुआ है।

यद्यपि पुस्तक मे इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य है और राजनीतिक बातों की कर्कशता काव्य के रेशमी वेष्टन मे भी झाँक उठती है तथापि मार्मिक स्थानों मे कवित्व आगया है। कवि भाव-विभोर हो जाता है।

कहीं कहीं इस में अमर सत्यों का भी बड़े मार्मिक ढंग से निरूपण किया गया है। देखिये—

सच्चा सन्त वही है जिसका मानस पर दुःखों से पिघला।
औरों की आँखों का आँसू जिसकी आँखों से वह निकला॥

सारी पुस्तक गांधी जी की इसी "पर दुख कातरता" से भरी है। "पर दुख कातरता" ही गांधी जी के जीवन का मूल मंत्र रहा है।

—गुलाब राय एम० ए० (सम्पादक 'साहित्य-सन्देश')

जब कुछ लोग बापू की जीवन गाथा को काव्य मे उतारने के सम्बन्ध में गम्भीरता से सोच रहे थे, कुछ उनके द्वारा लिखित जीवन-चरित्र में अप्राप्य घटनाओं की खोज मे व्यस्त थे, कुछ लोग उनकी जीवन-घटनाओं को फुटकर पद्यो मे बाँधना प्रारम्भ करके, उनको लगभग डेढ दो सौ की संख्या तक पहुँचाने के लिये उत्सुक थे, कुछ 'महात्मायण' का मंगलाचरण लिखने के बाद महाकाव्य पूरा करने के लिये स्फूर्ति की प्रतीक्षा कर रहे थे, और कुछ सिर्फ इसी पर गर्वित थे कि जगद्वंद्य बापू पर महाकाव्य लिखने की बात सर्वप्रथम उन्हीं को सूझी, तब तक तो श्री रघुवीर शरण जी 'मित्र' रचित २१ सर्गों का यह बडा महाकाव्य—जननायक—हमारे हाथों मे आ गया।

साहित्य शास्त्र के नियमो का प्रायः इस महाकाव्य की रचना में पालन हुआ है। यह सर्गबद्ध है। आठ से अधिक सर्ग है। प्रायः सर्वत्र एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है। सर्गो के अन्त मे छन्द का परिवर्तन देखा जाता है। महाकाव्य की कथा प्रख्यात होनी चाहिये, सो इसकी भी है। रस शान्त है। इसके नायक (महात्मा गांधी) को कुलानुसार दिव्यादिव्य (अवतार) श्रेणी मे रखा जा सकता है। स्वभावानुसार वह धीरोदात्त है। (सुशील और सर्वगुण सम्पन्न नायक को धीरोदात्त कहते हैं।) साहित्य शास्त्रियों ने महाकाव्य के प्रारम्भ मे मंगलाचरण का रहना आवश्यक बतलाया

है। 'कामायनी' और 'प्रियप्रवास' महाकाव्यो के कवियो ने इस नियम की अवहेलना की है परन्तु 'जननायक' के कवि ने ग्रन्थारम्भ मे सुन्दर मंगलाचरण लिख कर इस नियम को भी निबाहा है।

इस महाकाव्य मे घटनाओ और वर्णनो का तौल खूब साधा गया है। घटनायें कथानक को आगे बढाती हैं और वर्णन उसमे रमणीयता का रंग भरते हैं। वर्णनो मे चित्रमयता है। छन्दो मे प्रवाह है, संगीत है। स्थान-स्थान पर प्रातः, सायं, नदी, पर्वत, नगर आदि के वर्णन भी आये हैं। किन्तु उनकी बहुलता के बोझ से दबा कर कहानित्व के प्राण नहीं ले लिये गये, और न हिन्दी के महान कलाकारों के काव्य 'कामायनी' तथा 'साकेत' की तरह प्रगीतों की भरमार है, जहाँ महाकाव्य के स्वाभाविक प्रवाह मे बाधा पड जाती है। भूमिका लेखक देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों मे—'यह केवल एक छन्दबद्ध महात्मा गाँधी के जीवन की कहानी मात्र नही है। इसमें ओज है, सुन्दर वर्णन है, करुणा है और ललकार भी है।'

× × ×

टाँकी से खोद-खोदकर अनघड पत्थर मे से सुन्दर मूर्ति का निर्माण करके उसके सामने मस्तक झुकाने वाले भारतवासियो के जीवन मे कला उपासना और धर्म युगो से पर्यायवाची शब्दो जैसे रहे हैं। फिर 'जननायक' महाकाव्य के लेखक के लिये तो अपनी इस कला-कृति के सामने मस्तक झुकाने का एक अन्य कारण भी है। इसमे एक ऐसे महामानव का चरित्र चित्रित किया गया है जिसके पैर भले पृथ्वी को छूकर उसे पावन, प्राणवान् और मुक्त करते रहे हो, किन्तु जिसका मस्तक सदैव देवताओं की ऊँचाई से होड लेता रहा है। इसलिये महाकाव्य समर्पित करते हुए जब कवि लिखता है कि—

"तुम तो मुझे साधना दे गई—
पर मैं मर्त्यलोक का बुलबुला तुम्हें क्या दूँ ?
केवल ईश्वर का नाम ही है मेरे पास—
लो उसे सादर....... ...."

तो उसका यह कथन सार्थक जान पडता है और 'तुलसी' की ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं—

एहिमहँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुतिसारा॥

—कर्मवीर

प्रो० आर० सी० बिल्लौरे
एम०ए०, एल-एल०बी०